Barcode : 5990010046607
Title - Bharatvarsh Ki Veer Maatayen
Author - -
Language - hindi
Pages - 193
Publication Year - 1926
Barcode EAN.UCC-13

भारतवर्ष की
सौर मासाएँ

भारतवर्ष की

वीर मातायें

[सप्तम संस्करण]

जिसको

महाशय श्यामलाल वर्मा, आर्य्य-बुकसेलर,
बरेली ने पं० लालताप्रसाद शर्म्मा, द्वारा भारतवर्ष
की स्त्रियों के लाभार्थ उत्तमोत्तम ग्रन्थों से
संग्रह कराकर प्रकाशित किया ।

सप्तम वार २००० | सन् १९२६ ई० | मूल्य ।।।)

मुद्रक—पं० मन्नालाल तिवारी,
हरीकृष्ण कार्यालय, शुक्ला प्रिंटिंग प्रेस, ६६ लाटूश रोड, लखनऊ.

सप्तम संस्करण की भूमिका

यदि सच पूछो तो इस देश के गौरव का कारण "भारतवर्ष की वीर मातायें" ही है, जो अपनी अपूर्व योग्यता से बड़े-बडे शूरवीर योद्धाओ को उत्पन्न करती थीं ; जिससे आर्य्य-जाति सभ्यता के उच्च शिखर पर आरूढ थी। उन प्रचीन माताओ के पवित्र चरित्रो को वर्तमान माताओं तथा बहिनों के कानो तक पहुँचाने के लिये हमने इस संग्रह को छपाया है। बड़े हर्ष की बात है छः बार की छपी हुई इसकी बारह हज़ार प्रतियॉ हाथो-हाथ बिक गईं और यह सातवॉ-संस्करण है। इस संग्रह की लोक प्रियता और भारतवर्ष मे स्त्री-शिक्षा-प्रचार का यह ज़ोरदार प्रमाण है।

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
१ सुकन्या .. .	३	१२ द्रौपदी	१००
२ महारानी विदूला ..	१६	१३ दमयन्ती . ..	१११
३ विमला . ..	२५	१४ अर्गल की रानी .	१२९
४ भोगवती	४२	१५ सीता .. .	१३८
५ मरीचि .	५०	१६ तारामती (शैव्या)	१४९
६ कलावती .	५५	१७ करमदेवी और उसकी सन्तान ...	१६३
७ सुलोचना .	५९		
८ रेणुका .	६४	१८ महारानी सती ...	१६७
९ सत्यवती	६९	१९ पार्वतीजी ...	१७६
१० चंद्रकान्ता ..	८१	२० गँदाबाई	१८४
११ विजया . .	९२	२१ साहिब कुंवरि ...	१८९

॥ ओ३म् ॥

भारतवर्ष की

वीर मातायें

१—सुकन्या

मनुजी के एक पुत्र का नाम शर्य्याति था। सुकन्या उसकी इकलौती पुत्री अति सुन्दरी थी। इसके अतिरिक्त उसके और कोई सन्तति न थी। माता पिता ने सुकन्या को बड़े लाड़-प्यार से पाला था। राजधानी से थोड़ी ही दूर पर एक लम्बा चौड़ा तड़ाग था। उसका जल अति निर्मल और स्वाद-युक्त था। जल के बीच अनेक प्रकार के सुन्दर-सुन्दर कमल खिले हुए थे और उनके चारों ओर कदम्ब, तमाल, सुपारी, जामुन आदि के अनेक वृक्ष लगे हुए थे, उनकी शाखाओं पर मैना, तोता, मोर, कोयल, कबूतर आदि अनेक पक्षी बैठे हुए आनन्द से कलोल कर रहे थे।

उस सरोवर के पास एक घना बन भी था जहाँ सिंह व्याघ्रादि अनेक प्रकार के बनचर जीव निवास करते थे। उस

बन के बीच में एक रमणीय बाग में भृगु ऋषिजी के पुत्र च्यवन मुनि का आश्रम था। मुनि बाल्यावस्था में सांसारिक चिन्ताओं से निवृत्त हो इस ही स्थान में परमात्मा को स्मरण करते हुए अपने जीवन को व्यतीत कर रहे थे।

प्रभु सों निकट जगत न्यारा।
निशिदिन राम नाम आधारा॥
तापस दम शम दया-निधाना।
परमारथ पद परम सुजाना॥
राम ब्रह्म व्यापक जग जानी।
भज सोई प्रेम मग्न रहे ज्ञानी॥

उस सच्चे तपस्वी ने अपने आपको ईश्वर आराधना में ऐसा लीन कर दिया था कि उसको अपने शरीर की भी सुध नहीं थी। चिरकाल समाधि में स्थित होने से उसके शरीर पर चारों ओर मिट्टी जम गई थी, जिससे देखने वालों को पहिचानना कठिन हो जाता था कि यह पुरुष है या मिट्टी का ढेर है? केवल उसकी आँखें कुछ खुली हुई और कुछ मिची हुई थीं।

दैवयोग से महाराजा शरयाति अपनी रानी के साथ उस बन मे सैर करने के लिये आये हुए थे, कुमारी सुकन्या भी उनके साथ थी। राजा और रानी तो सरोवर के निकट एक स्थान पर बैठ गये, परन्तु सुकन्या अपनी सखियों को साथ लिये हुए सैर करते-करते उस स्थान पर जा पहुँची जहाँ मुनि अपनी समाधि में बैठे थे। बालापन के दिन भी विचित्र ही होते हैं। उसने देखा कि मिट्टी के ढेर पर कई पक्षी बैठे हुए हैं। राज-पुत्री ने उनकी ओर देखा, पक्षी उड़ गये पर उसने बाल्या-

वस्था के कारण यों ही मुनि की आधी खुली आँखों में तिनका डाल दिया। बस, अनर्थ हो गया। नेत्रों से रुधिर का प्रवाह बहने लगा और पीड़ा से मुनि कराहने लगे।

यह दृश्य देखकर सुकन्या भयभीत हो गई। वह क्या जानती थी कि मनुष्य भी कभी ऐसी अवस्था में रह सकता है! वह घबराई, राजा के पास आकर बैठ गई और कहने लगी—"पिताजी! मैंने मिट्टी के ढेर में छिद्र देखकर तिनका डाल दिया। उससे रुधिर बह रहा है और कराहने का शब्द सुनाई देता है। न जाने उसके अंदर क्या है और कौन है?"

राजा ने भोली-भाली पुत्री की बातें सुनकर माथे पर हाथ मारा। हो न हो इसने भूलकर च्यवन ऋषि के नेत्र फोड़ दिये, बड़ी शीघ्रता से दौड़ते हुए उस स्थान पर आये जहाँ च्यवन ऋषि बैठे थे। नेत्रों से रुधिर बह रहा था और पीड़ा से वे दुःखित थे। राजा ने हाथ बाँधकर कह—"हे महामुनि! मेरी कुमारी या अबोध पुत्री से अज्ञानता से अपराध हो गया है। आप क्रोध न कीजियेगा; अनजान के अपराधों को महात्मा जन क्षमा कर देते हैं। मैं शरयाति इस देश का राजा हूँ, आप जो आज्ञा करें उसी प्रकार आपकी सेवा का प्रबन्ध किया जाय।"

राजा के इन वचनों को सुनकर मुनि ने कहा—"कर्म की गति प्रबल है। कौन किसको अपराधी ठहरावे। फिर उसका परिणाम ही क्या है। मुझे इस कन्या पर क्रोध नहीं है, परन्तु चिन्ता इतनी है कि अन्धे की लाठी और असहाय का सहायक कौन बनेगा?"

राजा ने कहा—"इस बात की आप चिन्ता न करें। मेरे

नौकर आपकी सेवा में तत्पर रहेंगे।" मुनि ने उत्तर दिया—"यह सच है, इस बेबसी की अवस्था मे कोई किसी की सेवा नही कर सकता। ईश्वर किसी को बुरे दिन न दिखावे। बिगाने तो बिगाने अपने भी पास नही आते। भला तुम्हारे नौकर क्या मुझे सहायता दे सकेंगे ?"

हितु सम्बन्धी मित्रवर, कोऊ रहे न संग।
बिगड़े दिन तजि जात सब, ज्यों केचुली भुजंग॥

हाँ, एक बात हो सकती है। यदि वास्तव ही में तुमको मेरा ध्यान है और इस अज्ञानता के अपराध का प्रायश्चित् भी आपको स्वीकार है, तो उस कन्या का विवाह मेरे साथ करदें। मैं उसके आश्रय से जीवन व्यतीत कर लूँगा।"

राजा मुनि की बाते सुनकर व्यग्र हो गया। अन्धा साधु परम सुन्दरी सुकन्या से विवाह करना चाहता है।, रहें झोपड़ी में स्वप्न देखें महलो का, उस पर शोक का पर्वत टूट पड़ा। क्या कहता, चुपचाप साधु की बातों पर खड़ा-खड़ा विचार करता रहा। कुछ उत्तर नही दिया। सोचता-सोचता सरोवर के तीर पर आ गया। यहाँ उसके मंत्री प्रधानादि उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। सब उसको देखकर सत्कार करने के लिये उठ खड़े हुए। और जब सब लोग अपने-अपने स्थान पर बैठ गये, तो राजा ने सुकन्या की भूल और मुनि की प्रार्थना का वृत्तान्त कहा। सब विस्मित होकर राजा की बातें सुन रहे थे।

किसी की बुद्धि में नही आता था कि क्या सम्मति दें एक ओर सुकुमारी सुन्दरी सुकन्या की चिन्ता, दूसरी ओर

मुनि के दुःख की चिन्ता। सब बैठे हुए एक दूसरे का मुँह देख रहे थे। राजा के मुख का रंग पीत हो गया था।

कहत कठिन समुझत कठिन, भये सकल भयभीत।
एक एक को मुख तकै, जानि भाग्य विपरीति॥

—तुलसीदास।

इतने में सुकन्या आप सभा में आ गई और सब को चिन्तातुर देखकर भोलेपन से कहने लगी—"पिताजी! मैंने भूलकर अपराध किया, मैं मुनि की प्रार्थना को स्वीकार करती हूँ। आप कुछ चिन्ता न करें। यह सब बातें व्यर्थ हैं। मैं बड़े हर्ष से प्रण करती हूँ कि आज से च्यवन मुनि मेरे पति हैं। मैं बन में अपने पति के साथ रह कर परमात्मा की भक्ति में सहायक रहूँगी और उनकी सेवा को चक्रवर्ती महाराज के सुख से भी उत्तम समझूंगी।" हा शोक! राजा के दुःख का पात्र यदि अब तक पूर्ण नहीं हुआ था, तो राजकुमारी की बात सुनकर उछल पड़ा।

राजा ने उत्तर दिया—"अभागिनी कन्या! तू क्या कहती है? सिंहो की गुहाओं में अन्धे के साथ रहना तुझ जैसी सुकुमार और लाड़ प्यार से पली हुई सुन्दरी से कैसे हो सकता है।

जेहि विधि सुता रूपवति कीन्हा।
सो किमि अस दारुण दुख दीन्हा॥

—तुलसीदास।

सुकन्या ने कहा—"इसकी कोई चिन्ता नहीं है। मुनि ने बड़ी कृपा की, जो मुझे अपने साथ रखने की इच्छा प्रगट की।

आप विचार तो करें कि जिसको संसार से तनिक प्रेम नहीं है, जिसने अपने आपको वश कर लिया है, वह स्त्री को साथ रखना सामायिक कार्य के लिये आवश्यक समझता होगा। फिर मेरा इसमें कितना उपकार है। एक तो मेरा अपराध क्षमा ह जावेगा, दूसरे पति-सेवा का फल मेरे परलोक को सुधार देगा।"

मंत्रियों ने उससे कहा—"राजकुमारी! इस हठ को छोड़ दे, भयंकर निर्जन बन में बास, चिन्ता वा उपवास से निर्वाह, शरीर ढकने के लिये वृक्षों की छाल पहिनकर रहना; हाय! तेरा मन कैसे इन बातों को मानेगा।" सुकन्या हँसी और कहने लगी—"तुम्हारी दृष्टि केवल थोड़ी दूर तक जाती है। सांसारिक मिथ्या पदार्थ मेरे चित्त को प्रसन्न नही कर सकते। मेरा जीवन पति की सेवा में व्यतीत होगा। मेरा शरीर पति की छाया बनेगा। उसकी मधुर बातें मेरा भोजन होंगें और पति की कृपा ही मेरे वस्त्र होंगे। मैंने प्रणकर लिया है कि मेरी प्रतिज्ञा पार्वती की प्रतिज्ञा के तुल्य है जिसने कहा था—

वरूं शम्भु नहीं रहूं कुमारी।

अर्थात् यदि विवाह करूंगी, तो शिवजी के साथ करूँगी अन्यथा कुमारी रहूँगी। मैं च्यवन महात्मा की अर्द्धांगिनी बन चुकी। तुम मुझे अब से ऋषि पत्नी समझो और मैं अभी से राज-वस्त्र और अभूषणों को उतारे देती हूँ।" यह कहकर राजकुमारी ने एक-एक करके अपने सब वस्त्र और भूषण उतार दिये और लोगों के देखते-देखते वृक्षों की छाल से शरीर को ढाँक लिया। कोई क्या कर सकता था। शरयाति ने अपना शिर पीट लिया। रानी रोने लगी—"मन्दभागिनी सुकन्या, तू हमारे लिये जीते जी मर गई।"

सचमुच ही सुकन्या एक बड़े भारी वृक्ष की शाखा की नाईं आपही कटकर अलग हो गई। सुकन्या राजा से कहने लगी—"पिताजी! यह संसार असार है। संसार भोग-बिलास के वास्ते बना है, केवल अज्ञानी लोग ऐसा समझते हैं। मनुष्य तो केवल पवित्र धर्म-पालन करने के लिये जन्म लेते हैं। भाई बन्धु, अपने पराये सब झूठे सम्बन्ध हैं। पुरुष केवल धर्म का विचार करे। धर्म के लिये जियें और धर्म क लिये मरें। तुम मुझे एक दरिद्र साधु के साथ नहीं ब्याह रहे हो, वरन् एक महर्षि के साथ ब्याह रहे हो। जिसके साथ रहने की इच्छा राजकुमारी की है, क्या वह धूर्त है या निलज्ज है? यह वह महा पुरुष है कि जिसकी चरण-धूलि को बादशाह तक चूमते है।

ओं ब्रह्म जाकी निधि, शम दम तप विज्ञान।
ताहि पूजियत सकल जग, राजा रंक महान॥
—तुलसीदास।

पूर्ण योगेश्वर संसार को सचाई और सद् विद्या दान करते हैं, जो किसी राजा से भी नहीं मिलती चलो मुझे अब मुनि के समपर्ण कर दो।" अब सब को निश्चय हो गया कि सुकन्या के अन्तःकरण में मुनि की संगति का भाव दृढ़ हो गया है और अब किसी के कहने सुनने को वह न मानेगी संसार की लीला विचित्र है क्षण में क्या हो जावेगा, यह कोई नहीं जानता। शर्य्याति ने पुत्री का हाथ पकड़ लिया और आश्रम में लाकर उसे मुनि के समर्पण कर दिया। और उसके साथ बहुत कुछ धन पदार्थ सेवक आदि देने चाहे, परन्तु ऋषि ने इनको स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा—"मुझे और किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। नेत्रों के बदले नेत्र मिल गये। अब मुझको किसी

वस्तु की इच्छा नहीं। मैं अब सुकन्या की आँखों से देखूंगा, मेरी आवश्यकतायें आप ही पूर्ण हो जावेगी और बड़े प्रेम से परमात्मा की भक्ति करूंगा। सुकन्या से बढ़कर और उत्तम धन मुझे क्या मिल सकता है।

नित नूतन मंगल ग्रह तासू।
जहां शीलवति नारि निवासू॥
सुन्दरि सहज सुशील सयानी।
करहि पीय ग्रह मंगल खानी॥

—तुलसीदास।

सुकन्या पिता की ओर निहार कर कहने लगी कि—"जो वृक्षों के फल खाकर और स्रोतों का पानी पीकर क्षणभंगुर जीवन को व्यतीत कर सकते हैं, उनको संसार के पदार्थों की क्या आवश्यकता है? हम यती हैं, तपस्या हमारा गौरव है, त्याग हमारी सच्ची प्रतिष्ठा है।" राजा रानी विस्मित होकर सोचने लगे कि यह भी एक विचित्र लीला है, क्षण भर में कैसे मनुष्य इस तरह बदल जाता है। शरयाति वा उसकी रानी ने आलिंगन कर रोते हुए पुत्री को आशीर्वाद दिया—"हे पुत्री, तेरा सौभाग्य अचल हो। तेरी सती वा सावित्री की नाईं दुनिया में सत्कीर्ति हो।" साधु के साथ राजकुमारी के ब्याहे जाने का शोक उनसे क्षणमात्र में दूर हो गया। यह देवियें है कि जो दोनों कुलों को पवित्र करती है, जिनका नाम लेने से पुरुष पवित्र हो जाता है। अब राजा को अपनी इकलौती पुत्री पर पहले से भी अधिक प्रेम हो गया। अन्य राज-पुरुष शिकारी हर्ष वा विरह के आँसू बहाकर राजधानी की ओर चले गये और सुकन्या ने पति के चरण चुम्बन कर रोते हुए अपने अप-

राम की क्षमा चाही और दोनों आनन्द से काल व्यतीत करने लगे।

सुकन्या का नियम था कि प्रातःकाल नित्य पति को स्नान कराकर वह वृक्षों की लकड़ियें चुन लाती और स्त्री-पुरुष दोनो मिलकर हवन करते। फिर बन से फल फूल लाकर पति को खिलाती। इसी प्रकार सायंकाल भी हवन संध्या और भोजन के अनन्तर पति के आराम के लिये शैय्या भी बिछा देती। वह प्रतिक्षण उनकी सेवा में लगी रहती, यहाँ तक कि रात को भी जागती, इसलिये कि कहीं मुनि को किसी वस्तु की आवश्यकता न हो।

शीतकाल के दिनो मे अग्नि निरन्तर जलती रहती थी और घाम में दिन भर पंखा चलाकर वह उनको प्रसन्न रखती थी। दिन को जब कभी अवकाश मिलता, तो वह पुराण वा उपनिषद् पढ़कर सुनाती रहती। जो कोई अतिथि आता उसका वह आदर सत्कार करती। आश्रम के हिरन, पाढ़े, सिंह, व्याघ्र उसको देखकर प्रसन्न रहते थे और उनके मन उसकी प्रीति के वश में थे। क्या कोई नौकर चाकर मुनि की इस प्रकार सेवा कर सकता था ?

राम-राम कहो! उसमें यह जितेन्द्रियता और यह प्रेम कहाँ ?

हिन्दू स्त्रियों! भारत ऐसी ही माताओं से सर्वोच्च था और जब तक ऐसी स्त्रियाँ किसी देश में उत्पन्न होती हैं, तब तक उस देश की तनिक भी किसी प्रकार की दुरावस्था का भय नहीं है। एक दिन प्रातःकाल जब सुकन्या वृक्षों से गिरी हुई लकड़ियाँ चुन रही थी, तो उस समय अश्विनीकुमार उधर

से आ निकले। जंगल में मंगल का स्वरूप देखकर वे चकित हो गये और विचारने लगे कि जो वृक्षो की छाल से शरीर को ढके हुए इस प्रकार इस निर्जन बन में निभय घूम रही है, वह कौन देवी है ? उनके मुख से आकस्मात् यह शब्द निकले--

नभ भूमि पर यह कैसा, तारा चमक रहा है।
मोती व लाल से भी, बढ कर दमक रहा है॥

सुकन्या ने शिर ऊँचा किया अश्विनीकुमार हैरान होकर पूँछने लगे—"देवी ! सत्य कह, तू कौन है ? इस सुनसान बन में तेरा क्या प्रयोजन है ? इस भिक्षुक-भेष की क्या आवश्यकता है ? तेरे माता पिता को धन्य है। तेरा पति कोई महा भाग्यवान पुरुष होगा। तेरे रूप से सौभाग्य का तेज झलक रहा है।"

सुकन्या बोली—"मैं राजा शरयाति की कन्या और च्यवन ऋषि की पत्नी हूँ। बन हमारा घर है, फल-फूल हमारा भोजन और वृक्षों की छाल हमारे वस्त्र हैं। आप कृपा करके आश्रम को पधारिये, वहाँ मेरे पति बैठे हुए हैं, जो अतिथि धर्म को भली भाँति जानते हैं। वह सेवा-धर्म से अनभिज्ञ नही हैं ?"

अश्विनीकुमार को यह सरल उत्तर सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होने फिर कहा—"सुन्दरी ! मैं अश्विनीकुमार हूँ। तेरा पिता कैसा है, जिसने अन्धे तपस्वी से तेरा विवाह कर दिया। तू इस बन में उस बिजली के समान शोभित हो रही है, जो घनी काली घटाओ के बीच रहकर चमक उठती है। तू इस योग्य थी कि किसी राजा के साथ सिंहासन को सुशोभित करती, तेरा शरीर सुन्दर वस्त्र और उत्तम आभूषणों से भूषित होता। जंगल के दुःख और क्लेश तुझको कैसे प्राप्त

हुए हैं ? चीथड़ों में लाल को किस मूर्ख ने लपेटा है ? कर्म की गति निराली है। तू एक निकम्मे पति के पल्ले पड़ी है, वह तेरी क्या सेवा कर सकेगा ?

राजकन्या ! सचमुच यह भेष, यह बन, यह पति तेरे योग्य नही है। तू अपने जीवन को व्यर्थ खो रही है। अच्छा यह है कि अंधे कि प्रीति त्याग कर किसी राजमन्दिर को सुशोभित कर।"

इतना सुनते ही ऋषि-पत्नी के नेत्र क्रोध से लाल हो गये, परन्तु धैर्य वा शान्ति के साथ उसने क्रोध को रोककर उत्तर दिया—"अश्विनीकुमार ! आप ऋषियों में श्रेष्ठ और पूजनीय समझे जाते हो। तुमको सूर्य-पुत्र होने का अभिमान है। परन्तु आज तुम एक पतिव्रता स्त्री को ऐसा अधर्म सिखाने आये हो ? अपने मन को पवित्र करो नही तो सूर्य की झुलसाने वाली धूप तुमको जलाकर भस्म कर देगी। वा पृथिवी तुम्हारे अपवित्र शरीर को किसी गहरी खाई में दबा देगी। महात्मा च्यवन ऋषि के विषय मे ऐसे दुर्वचन आपको किस आचार्य ने सिखलाये हैं ? बड़ो का अपमान करने से डरो और पर-स्त्री के धर्म बिगाड़ने से हटो। सबसे अधिक पतिव्रता स्त्री की क्रोधाग्नि तुमको भस्म न कर दे ?

मैंने तुमको ऋषि समझ कर तुम्हारा आदर किया और आश्रम में चलने का निमन्त्रण दिया। हे कृतघ्न ! यह कैसा नीचपन और धूर्तता है, जो किसी प्रकार क्षमा के योग्य नही है।"

सुकन्या की बातों ने अश्विनीकुमार के मन को कंपित कर दिया। उन्होंने नम्रतापूर्वक आर्त स्वर से कहा—"हे पतिव्रते !

तू धन्य है। देवी ! तेरा साहस धन्य है। मैंने केवल ऐसी बातें तेरी परीक्षा के लिये कही थीं। मैं तुझ पर बड़ा प्रसन्न हूँ, जो सेवा मेरे योग्य हो वह कह, मैं उसे पूरी कर दूंगा। संसार मुझे पूर्ण वैद्य कहता है यदि तेरी इच्छा हो, तो मैं च्यवन ऋषि को नेत्र दे सकूंगा और उन्हें निरोग कर दूंगा।"

सुकन्या ने शिर झुका लिया और फिर चुपचाप आश्रम में आकर पति से कहने लगी—"हे भगवन् ! अश्विनीकुमार आश्रम में आये हुए है। वह कहते हैं कि मैं मुनि के नेत्र ठीक कर दूंगा। आज्ञा कीजिये आपंकी क्या अनुमति है ?" च्यवन ने कहा—"उस महात्मा को शीघ्र मेरे पास ले आओ।" तब सुकन्या गई और उनको ले आई। च्यवन ऋषि ने उठकर उनका आदर किया। अश्विनीकुमार की चिकित्सा से च्यवन ऋषि के केवल नेत्र ही नही खुल गये, वरन् उनका शरीर भी आरोग्य कमल की नाईं हो गया और वे युवक प्रतीत होने लगे। च्यवन मुनि अश्विनीकुमार की इस कृपा से प्रसन्न होकर कहने लगे—"प्रभो ! तुम ने मेरा बड़ा उपकार किया, कहिये मैं इसके बदले में आपकी क्या सेवा करूँ ?" अश्विनीकुमार ने कहा—"आप एक बार कृपा करके हमारे यज्ञ में पधारें, इससे हमारी प्रतिष्ठा होगी।" च्यवन ऋषि ने आनन्दपूर्वक उनकी बात को स्वीकार कर लिया।

थोड़े दिनों के अनन्तर शर्याति और उनकी रानी को सुकन्या के देखने की अभिलाषा उत्पन्न हुई। रथ पर बैठ कर वह ऋषि के आश्रम में आये। यहाँ देखते क्या हैं कि सुकन्या एक सुन्दर नवयुवक तेजस्वी मुनीश्वर के साथ बैठी हुई हवन कर रही है। इनको आश्चर्य हुआ, क्या लड़की ने कोई निन्दित कार्य तो नहीं किया ? माता पिता के लिये इससे अधिक और

कोई दुःख नहीं है कि उनकी लड़की कोई अनुचित व्यवहार कर बैठे। वह दूर खड़े सोच रहे थे और बार-बार अपने भाग्य को धिक्कार रहे थे। जब हवन समाप्त हो गया, सुकन्या ने सिर उठाया। थोड़ी दूर पर राजा और रानी दिखाई दिये। उसने दौड़कर प्रेम से गले मिलना चाहा, परन्तु माता पिता को स्तंभित देखकर वह वहीं खड़ी हो गई। माता के नेत्र आँसुओं से डब-डबाये हुए थे। पिता ने क्रोध भरे स्वर से कहा—"पुत्री! च्यवन ऋषि कहाँ गये? शीघ्र उत्तर दे। मैं चिरकाल से खड़ा हुआ इसी चिन्ता में पड़ा हूँ।"

सुकन्या अपने पति को बुला लाई और माता पिता के प्रति कहने लगी—"यह च्यवन ऋषि तुम्हारे जामाता उपस्थित हैं। अश्विनीकुमार की चिकित्सा ने इनको इस दशा में परिवर्तित कर दिया है, आप चिन्ता न करें।

घबराती हो क्यों? होश को क्यों खोती हो माता!
हँसने का समय आया, तो तुम रोती हो माता।"

फिर च्यवन मुनि ने समस्त वृत्तान्त कह कर दोनों के संदेह को दूर किया। फिर तो रानी ने रोकर पुत्री को छाती से लगा लिया और कहने लगी—"सुकन्या, आज तू फिर मेरी गोद से उत्पन्न हुई है। मेरी कुक्षि धन्य है! तू सचमुच दूसरी सावित्री है।"

माता पिता दोनों अति प्रसन्न हुए, सारे वन के ऋषि इकट्ठे हुए। आनन्द के बाजे बजने लगे। चारो ओर सुकन्या और च्यवन ऋषि की कीर्ति फैल गई। जिसने सुना उसी ने उनकी प्रीति की प्रशंसा की। हमको भी आशा करनी चाहिये कि हमारे पाठक इस कथा को पढ़कर अपने घरों की स्त्रियों को

सुनायेंगे और हमारी प्राचीन माताओ के पवित्रता के संस्कारों को नये सिरे से जीवित करेंगे।

सुकन्या, तू धन्य थी! तेरा पतिव्रत धर्म धन्य था!

—महारानी विदूला

चौपाई

देव दनुज भूपति भट नाना।
सम बल अधिक होहु बलवाना॥
जो रण हमहिं प्रचारहि कोई।
लड़हिं सुखेन काल किन होई॥
क्षत्रिय तन धरि समर सकाना।
कुल-कलंक त्यहि पामर जाना॥
कहौं सुभाव न कुलहिं प्रशंसी।
कालहु डरहिं न रण-रघुवंशी॥

—तुलसीदास।

विदूला का जन्म क्षत्रियों के घर में शाम्वत वंश में हुआ। उस कुल के क्षत्रियों की यह प्रतिज्ञा थी कि चाहे प्राण चले जावें परन्तु शत्रु को जीते बिना रण से नही फिरेंगे। विदूला में अपने कुल के सम्पूर्ण श्रेष्ठ उत्साह और धैर्य्य आदि गुण कूट-कूटकर भरे हुए थे। इसका विवाह सुवीर राजा के साथ हुआ जोकि मारवाड़ के दक्षिण में किसी प्राचीन राजधानी का मालिक था। इस वीर पुरुष की मृत्यु के पीछे संजय नामक उसका लड़का

सिहासन पर बैठा परन्तु यह उत्साह-हीन, बुद्धि-रहित और राजकीय कार्यों से अनभिज्ञ था और सदैव नृत्य गीत के देखने में लगा रहता था। इस दशा को देखकर सिन्ध के राजा ने उस पर चढ़ाई की, संजय हार गया। उसकी सेना इधर उधर भाग गई। संजय ने अपने प्राण बचाकर एक पर्वत के शिखर पर डेरा लगा दिया।

जब विदूला ने, जो पति की मृत्यु के अनन्तर परमात्मा के ध्यान में लगी रहती थी, यह दशा देखी, तो उसके नेत्र क्रोध से लाल हो गये। वह पढ़ी-लिखी और नीति शास्त्र के विषय को अच्छी तरह से समझती थी। वह झट अपने पुत्र के पास पहुँची और उसको धिक्कार की। जिन तीव्र वचनों से उसने संजय को कमर बँधाई वह हमारे सौभाग्य से महाभारत में लिखे हुए हैं। उनको सुनकर भीरु से भीरु पुरुष के हृदय में भी वीर-रस भर आता है। वह वचन महाभारत के १४ पृष्ठों पर लिखे हैं, परन्तु हम उनमें से कुछ छाँटकर आपकी भेंट करते है।

विदूला कहती है—"शत्रुओं को आनन्द देनेवाले! तू मेरा पुत्र नहीं। इस कुक्षि से अग्नि उत्पन्न होती जो शत्रुओं को जला देती। सच कह, तू किसके वीर्य से उत्पन्न हुआ है? तू न अपने पिता का है न माता ही का, क्योंकि तेरे क्रोध का नाम नहीं। तेरी पुरुषों में कौन गिनती करेगा, जो रण को छोड़ कर भाग आया है! यह क्षत्रिय-पुत्र के लिये योग्य नहीं। यदि तू अपना भला चाहता है, तो अपनी भुजाओं को सँभाल। अपने जीवन को कलंकित न कर। अपने आत्मा को अपवित्र न कर। निर्लज्जता में जीवन के दिन व्यतीत न कर। उठ खड़ा हो। भय को त्याग। क्षत्री का पुत्र जय का अभि-

लाषी होता है। वह किसी के आधीन होना नही चाहता, वरन् सिह की तरह रण-क्षेत्र में गर्जता हुआ शत्रु को अपने पंजे के नीचे करना चाहता है। क्षत्री मध्यम या अधम दशा में रहना नहीं चाहता, वह महत्व और सन्मान के शिखर पर वास करता है। तेरे लिये यही उचित है कि तू एक बार क्षत्री धर्म को उत्तेजितकर शत्रुओ को दग्धकर या आप उनके हाथ से रण में प्राण दे। यह क्या नीचपन है, तेरे जैसा भीरु क्या काम करेगा, क्या धर्म करेगा? तेरे लिये उचित था कि तू हाथ से तलवार को नचाता हुआ रण में चमकती हुई बिजली के समान दिखलाई देता। मरता अथवा मारता। लोग धन्य-धन्य करते।

सब जग तेरी करे बड़ाई।
शूरवीर अति संजय भाई॥
शत्रु अनीकर किया विनाशा।
छोड़ भूमि कियो स्वर्ग प्रकाशा॥

जिसमें बल नही है, पौरुष नही है, लज्जा नही, वह निर्लज्ज है। न उससे मित्रो को आशा है, न शत्रु को भय है और न वह प्रजा की रक्षा ही कर सकता है। उससे न पिता का नाम विख्यात होगा, न माता की छाती शीतल होगी। हाय पुत्र! यह बन का वास, यह आपत्ति, तूने किस प्रकार स्वीकार को? संजय! तू पुरुष बन, स्त्रियों का लिबास मत पहन, यह मेरी इच्छा है।

दोहे

छोड़ि भीरुता त्यागि भय, करहु शत्रु दल नाश।
काटि गिरावहु शत्रु महि, लेन न देहु उसास॥

गगन दमामा जब बजै, पड़े निशाने चोट ।
सूरा तड़पै खेत बिन, ताके भागे खोट ॥
खेत न छोड़े सूरमा, जूझे जो दल मांहिं ।
आशा जीवन मरन की, मनमें राखै नाहिं ॥
अब तो जूझे ही बने, मुड़चाले घर दूर ।
सिर साहिब को सौंपते, सोच न कीजे शूर ॥
शूर चला संग्राम को, कबहुँ न देवै पीठ ।
आगे चल पाछे फिरो, ताको मुख नाहिं दीठ॥

—कबीर साहब ।

संजय माता की बात सुनकर उठ खड़ा हुआ और कहने लगा कि—"माता, संसार में तेरे को क्या सुख मिलेगा ? जब तेरा पुत्र मर जावेगा, तो यह राज-भोग तेरे लिये किस काम आवेगा ?" विदूला ने उत्तर दिया—"मूढ़ लड़के ! मरना जीना तो लगा ही रहता है, इसको कौन रोक सकता है ? जो मैदान में मरता है वह स्वर्ग पाता है, जो रण से भागता है वह नरक का भागी होता है। क्षत्री जब तक लड़ाई में वीरता से प्राण नही देता माता पिता का ऋणी रहता है। कायर न बन, ऐसा हो कि ब्राह्मण भिक्षु तेरा आश्रय लें यदि तुझ में बाहुबल हो, तो दूसरों को क्यो शरण ले। जो निज भुजा के बल से संसार में काम करता है वह लोक परलोक में यश पाता है, माता अभिमान से कहती है, यह मेरा पुत्र है, जिसकी आँख सिंह के भी सन्मुख नहीं झपकती।

माना कि सिन्धु राजा के पास निसंदेह सेना बहुत है, परन्तु वीर क्षत्री अपने देश में शत्रु को सुगमता से मार सकता

है। ऐसी प्रबल शक्ति से हाथ में तलवार ले और अपने सिपाहियों को इकट्ठा करके शत्रुओ के सन्मुख हो। भीरुओ की तरह मृत्यु से न डर।" संजय यह बातें सुनकर बोला—"माता ! तुझको लड़ना भिड़ना ही सूझता है, तेरा मन पत्थर का बना है, तेरा हृदय लोहे का है, तू इस तरह की बातें करती है जैसे मैं तेरा पुत्र ही नही हूँ और न तू मेरी माता है। यदि मैं मर गया, तो यह राज लेकर तू क्या करेगी ?" विदूला ने उत्तर दिया—"मुझे राज काज का विचार नही है किन्तु इस बात का विचार है कि तू अपकीर्ति के मार्ग पर चल रहा है। तेरे बाप दादा कभी इस पथ में नही चले थे। क्षत्री इस वास्ते पैदा हुए हैं कि सब की रक्षा करें। क्षत्री के बाहुबल पर ब्राह्मण वैश्य, शूद्र तीनो वर्ण जीते है। क्षत्री आग है, जिसको देख कर बन के हिंस वा व्याघ्रादि पास आने का साहस तक नही करते। यदि यह आग शान्त हो जावे, तो राज्य की क्या दशा होगी ? इसलिए तू जा और रण को शत्रुओं की लाश से पाट दे, उनकी सेना की संख्या का विचार न कर।

शूरा नाम धराय कर, अब क्यों डरिये वीर।
मर रहना मैदान में, सन्मुख सहना तीर॥

संजय ने कहा—"माता, पुत्र के सन्मुख ऐसी बातें न कर, कृपा-दृष्टि से देख। मैं तेरी आज्ञा-पालन में त्रुटि न करूँगा।"

माता बोली—"अब जाकर मेरे दिल में सहारा आया। मेरी वास्तव में यही इच्छा थी कि तेरे में उत्साह पैदा हो। तेरी मैं प्रतिष्ठा करूँगी परन्तु उस समय जब तू राजा सिंध की सेना को नष्ट करके आवेगा और संसार में प्रसिद्ध होगा कि

संजय ने अपने बाप-दादा के धर्म को पालनकर अपने वंश की वीरता को स्थापन किया है।"

संजय ने कहा—"माता देख, न मेरे पास धन है, न सेना है, मैं ऐसी दशा में कैसे जय पा सकता हूँ? अपनी निर्बल दशा को देखकर मैंने राज्य की आशा इस प्रकार छोड़ दी है जैसे दुराचारी पुरुष अपने पापों से घबराता है। तू बुद्धि-युक्त है, बता मैं क्या करूँ और किस विधि शत्रुओं पर जय पाऊँ?"

माता ने उत्तर दिया—"क्रोध, भय, भीरुता इन तीनों के कारण कार्य-सिद्ध नही होता। यदि कोई यह आशा रक्खे कि क्रोध से काम निकल जावेगा, तो वह अज्ञानी है। कार्य-सिद्ध के विषय में किसी को भी यह निश्चय नहीं होता, तो भी पुरुष को काम करना चाहिये। काम धैर्य और उत्साह से होता है। तू कटारी बाँधकर खड़ा हो और इसका फल ईश्वर पर छोड़। मैं देखती हूँ अब तू सम्मति के योग्य होगया है, इसलिये मैं तुझ से कहती हूँ। जिस तरह सूर्य पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर सब को अपनी किरणो से घेर लेता है, इसी तरह तू भी अपने बल को काम में ला।

तेरे राज्य में ऐसे पुरुष हैं जिनमें राज-भक्ति का अभिमान है और जो शत्रु को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, उनको अपने झंडे के नीचे खड़ाकर। जो धन के अभिलाषी हों, उनको रुपया दे कर अपना काम निकाल। जिनको शत्रु से हानि पहुँचती है, जो दुःख और बदले की आग से जल रहे हैं उनको निश्चय दिलाता रह कि उनके साथ तू पूर्ण दुःख का भागी है, वह तुझे सहायता देंगे। जिस तरह मैंने दुर्वचन कहकर तुझको संग्राम के लिये उद्यत किया है; उसी प्रकार तू भी क्षत्री और राजपूतों

को बुलाकर मृदु वचनो से उत्तेजित कर। परन्तु प्रत्येक पुरुष का स्वभाव देखकर उसी रीति से उसको अपने आधीन कर। इस प्रकार तेरे पास वीरो की बहुत संख्या हो जावेगी। जिस समय तूने दृढ़ प्रतिज्ञा की, तेरा विचार, तेरी प्रकृति और तेरे धैर्य्य को देखकर तेरे शुभचिंतक आपही आप चारो ओर से आ जावेगे। तू उनका सर्दार अग्रणी बन जा और जब शत्रु सुनेंगे कि यहाँ मरने-मारने का प्रबन्ध हो गया है, तो इस ख़बर से उनमें स्वयं दुर्बलता उत्पन्न होगी। राजा पर भाँति-भाँति की आपत्तियाँ आती रहती है, परन्तु वह कभी अपने मन की घबराहट प्रकट नही करता। प्रजा, सेना, राज-पुरुष, कर्मचारी डर जाते है परन्तु, राजा अपनी बातो से उनको धैर्य देता रहता है। कोई शत्रु से मिल जाते हैं। कोई राजा की सहायता छोड़ देते हैं। कोई घबराकर लड़ना स्वीकार नही करते। परन्तु याद रख कि उन सबका प्रबन्ध राजा के हाथ मे होता है। राजा यदि प्रत्येक पुरुष की प्रकृति जानता है, तो वह हर एक के साथ अलग-अलग बर्ताव करता वा कराता हुआ अपनी सहायता नियत रख सकता है और वह सब उसके लिये प्राण देने को तैयार हो जाते हैं। तुझे ऐसे भी लोग मिलेंगे जो केवल तेरी जाति के विचार से तेरे मित्र हो जावेंगे, उन पर तू पूरा-पूरा विश्वास रख सकता है, परन्तु इतना अधिकार उनको भी नही देना चाहिये कि समय पर वह धोखा दे सकें। किसी को भयभीत मत कर, अपने दुःख से औरों को भी दुःखी मतकर। आपत्तियाँ आवें तो आपत्तियों से बचने का उपाय कर, परन्तु तेरा मन उनके सन्मुख पर्वत के समान स्थिर दिखाई दे। वह कभी तेरा साथ न छोड़ सकेंगे। यदि तूने मेरी बातें अच्छी तरह धारण कर ली हैं, तो तुझको फिर

जय मिलेगी । उठ ! वीरता की शरण ले । मेरे पास ऐसा भंडार है, जिसकी ख़बर और किसी को नही है । मेरा धन तो वह प्राणप्रिय पुत्र है, जो हीरे की कनी के समान चमकता हुआ शत्रुओं के हृदय को विदीर्ण कर अपने पिता के नाम को विख्यात करने वाला है ।"

इन बातों के सुनने से संजय को धैर्य आ गया और उसने कहा—"तू मेरी सच्ची प्रधान है । अब तक मै भय से घबराया हुआ थ । परन्तु अब तेरी बातों ने मेरे सोये हुए मनको जगा दिया है । माता ! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं या तो लोहे से लोहा बजाता हुआ शत्रुओ का सत्यानाश करूँगा या संग्राम में मेरे प्राण जावेंगे । दोनो दशाओं में मेरा भला होगा ।

जाता हूं रण में सेना है यदि मेरे पास कम ।
आगे बढ़ा के फिर नहीं हटने का यह क़दम ॥

यह कहकर लड़ने के लिये ऊँची पहाड़ी पर जाकर संजय ने अपना झंडा ऊँचा किया । हज़ारों पुरुष उसके नीचे अब ठहर गये । राजा ने सब की ओर देखकर कहा—"मित्रो ! निर्लज्जता और दासपन से जीना मृत्यु से भी बुरा होता है । जीते जी अपने प्यारों को दुःख से छोड़ना और अपने देश को शत्रुओं के हाथ से दुखित कराना केवल कायरो और नीचो का काम हुआ करता है । मैं तुम्हारे लिए राजा को प्रतिष्ठा में प्राण देने चला हूँ । वह प्राण तुम्हारे और तुम्हारे देश के है और उन्हें तुम पर बलिदान करने के लिए तैयार हूँ । देश की सेवा में सबसे पहिले मैं तुम्हारा अग्रसर हूँ । कहो, तुम्हारी क्या सम्मति है ?" सब ने उच्च स्वर से कहा—"हम लड़ने के लिए कटिबद्ध हैं और हम में से एक पुरुष भी ऐसा नही जो संग्राम से विमुख हो ।" राजा ने कहा—

"आप धन्य हैं। जहाँ इतना पुरुषार्थ और दृढ़ता होती है, वहाँ निश्चित राजा विजय पाता है। अपने देश से इन लुटेरों को दूर भगा दो।"

इसके अनन्तर वह संपूर्ण सेना जल-प्रवाह की तरह पहाड़ से नीचे उतरी। शत्रु को पहिले से गुप्तचरों ने ख़बर दे रक्खी थी कि संजय दृढ़ता और सावधानी से धावा करेगा। वह तैयार थे, परन्तु जब संजय के सैनिक उमड़ते हुए समुद्र की तरह आगे बढ़े और रणभूमि को शत्रुओं की लाशों से पाट दिया तो शत्रु भी इस प्रकार चिल्लाने लगे—

दो०—कहा कोई इन सँग लड़े, इनकी बात अगाध।
आशा छोड़हु देह की, अब रण-रोग असाध॥

शत्रु रण से पीठ दिखा गये। सब के सब भाग निकले उनकी सम्पूर्ण युद्ध-सामग्री, धन पदार्थ आदि संजय के हाथ आ गई और जिस समय विदूला ने अपने पुत्र के जय की ख़बर सुनी वह आप रणभूमि में आई और सब के सन्मुख उसके माथे को चूम कर कहने लगी—"संजय, तू अपने पिता का पुत्र है, विदूला के नेत्रों का तारा है और राज-कार्य का अधिकारी है।" पुत्र ने माता के चरणो को चूमा और समस्त सेना ने मंगलाचार के बाजे बजाये।

यह महारानी विदूला का संक्षित वृत्तान्त है। यह क्षत्रणी देवियों के मन वा मस्तिष्क का एक विख्यात दृष्टांत है। जिस देश में ऐसी मातायें हों, क्या उनके पुत्र कदापि कुपुत्र, अयोग्य और निकम्मे हो सकते हैं? माताओं की शिक्षा उनको धर्म-पथ पर दृढ़ रक्खेगी और वह अपने कुल के भूषण बनेंगे और राज्यभक्ति में सब से मुख्य दृष्टिगोचर होंगे।

विदूला ! तू धन्य थी। तेरा साहस धन्य था। ईश्वर करे अब भी तेरे बल वा योग्यता की मातायें भारत में उत्पन्न हों।

३-विमला

चन्द्र टरे, सूरज टरे, टरे जगत व्योहार।
मेरु टरे, गिरिवर टरे, टरे न सत्य विचार॥

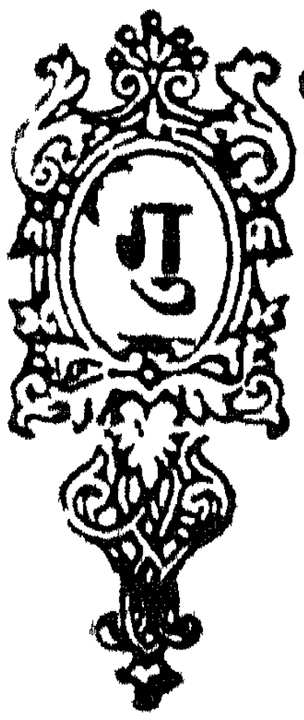

गुजरात में एक जयशेखर का नाम राजा हो चुका है। इस राजा की पंजासुर नामी राजधानी थी। कहते हैं कि यह ६९५ में राज्य करता था इसके समय में यह नगर बड़ा आबाद और रौनक पर था। प्रत्येक जाति के पुरुष उसके सन्मान की चर्चा सुनकर पंजासुर में आ बसे थे। जयशेखर धर्मात्मा, वीर, महाविद्वान् और प्रतापी था। यद्यपि विक्रमादित्य की तरह उसकी सभा में नवरत्न नहीं थे, तथापि दो चार विद्वानों के नाम अब तक संसार को स्मरण हैं, जो उसकी सभा के अलंकार थे। उनमें शंकर नामी कवि सबसे अधिक प्रसिद्ध है। उसने अपनी कविता में राजा जयशेखर के ऐश्वर्य्य और विद्या की बड़ी प्रशंसा की है। विमला उसकी भगिनी थी। यह राजकुमारी केवल सौंदर्य में ही अद्वितीय नहीं थी वरंच प्रत्येक प्रकार की विद्या में भी पूर्ण थी। पुराण, काव्य व धर्म-शास्त्रों के विषय को अच्छी तरह से जानती थी। जयशेखर की इच्छा थी कि किसी योग्य युवा के साथ इसका विवाह किया जावे। परन्तु उसकी दृष्टि में कोई वर विमला के योग्य नहीं जँचता था।

कई एक राजकुमार इसके याचक हुए, परन्तु भाई ने अपनी बहिन का विवाह किसी के साथ नही किया। भाई और बहिन में बड़ा प्रेम था। जब कभी वह विमला के विवाह की बात करता तो लजाती हुई राजकुमारी अपनी भावज को सुनाकर कहती कि—"भाई का दिल मेरी ओर से फिर गया है, तभी तो उन्हे मुझे घर से निकालने की चिन्ता पड़ी है।" उसकी भोली-भाली बातें सुनकर सब हँस पड़ते थे। फिर भी वह उसके विवाह से असावधान नही थे। क्योकि बेटियाँ पराया धन है। हिन्दू कुलो में उनको अपने घर जाकर रहना उचित समझा जाता है।

एक दिन का वृत्तान्त है कि मुलतान के महाराजा प्रवास-क्षेत्र को कही जाते हुए अपनी रानी वा बाल-बच्चों के साथ पंजासुर मे रहने का अवसर मिला। जयशेखर ने इनको अपने घर अतिथि रक्खा और बड़े आदर से एक महीना तक वहाँ रहने क लिए उनसे प्रार्थना की। मुलतान के राजा का लड़का सुरपाल बहुत सुन्दर साधु स्वभाव, वीर और युवा था। वह तलवार वा बाण चलाने और संग्राम के विषयों में भी बड़ा निपुण था। सैर वा आखेट स भी उसको बड़ा प्रेम था।

एक दिन जयशेखर उस युवा मैहमान को शस्त्रालय में ले जाकर अपने शस्त्र दिखा रहा था। अकस्मात् उसकी रानी के मुख से निकल गया कि—"मैंने कभी शेर का शिकार नहीं देखा है, आप दोनों जने एक बार हम सब को इसका तमाशा दिखलाइये।" वीरो को स्त्रियो की बात का बहुत ध्यान होता है। उसने हँसकर कहा—"बहुत अच्छा, यह समय भी उत्तम है, एक नही दो तमाशे दिखाने वाले तैयार हैं।'

दूसरे दिन बन की तैयारी कर दी गई। विमला भी साथ

थी और भाई भावज दोनो चाहते थे कि यदि सुरपाल से इसका विवाह हो जावे, तो जोड़ी अच्छी है। परन्तु कठिनता यह थी कि विमला का स्वभाव विचित्र प्रकार का था। अभी तक सांसारिक व्यवहार की उसे कुछ खबर ही नही थी।

जयशेखर ने सोचा कि राजपूतनी के हृदय को वश करने के लिए वीरता और धीरता के कर्तव्य दिखलाने के सिवा और कोई अच्छा उपाय नही होता। सम्भव है कि शेर के शिकार में सुरपाल का सौजन्य और निर्भयता देखकर उसका मन उधर लग जावे, इस कारण जयशेखर ने शिकार को बहुत उपयोगी समझा। मुलतान और पंजासुर के महल की रानियाँ राजकुमारियों के साथ एक मचान पर बैठा दी गइ जो किसी ऊँचे वृक्ष से मिलाकर बनाया गया था। जयशेखर और सुरपाल हाथी पर सवार थे।

दरबारी लोग भी सब संग थे। शेर का पता लगाया गया। नदी के सुनसान किनारे पर एक बलवान् शेर सो रहा था। जयशेखर ने ताककर तीर मारा। शेर चौंककर सामना न करने के स्थान में कूदकर एक ओर खड़ा हो रहा। जयशेखर ने हाथी को उसके पीछे डाल दिया। जब शेर ने देखा कि हाँकने वाले साथ हैं, वह दूसरी ओर झुका। इतने में जयशेखर का तीर फिर कमान से निकला, परन्तु वार खाली गया। वह भी शेर ही था, बड़ा भयानक गर्जता हुआ हाथी पर झपटा। राजा तीर तो न चला सके किन्तु उन्होंने भाले की चोट करनी चाही। परतु शेर ने भाला और जयशेखर दोनो को हाथ से पकड़ कर भूमि पर पटक दिया। शेर ऊपर और जयशेखर तले। अति भयानक समय था। उस समय राजा के प्राणों का भय बन रहा था। उस समय सुरपाल ने ताक

कर शेर के तीर मारा और फिर भाला हाथ में लेकर वह शेर पर कूद पड़ा। शेर का काम भाले और सुरपाल के धावे से वहीं तमाम हो गया। जयशेखर की जान बच गई। क्रोध की दशा में पुरुष का सौन्दर्य प्रायः भड़क उठता है। सुरपाल की निर्भयता और शूरवीरता ने विमला के हृदय को आकर्षित कर लिया, और उस वक्त से उसको यह इच्छा हुई कि यदि मेरा विवाह हो, तो इसी वीर राजपूत के साथ हो। स्त्रियाँ, स्त्रियों के भेद की बातों को भली भाँति जान लेती हैं। जयशेखर की रानी जान गई कि विमला अब अपने आपे में नहीं रही और उसने उपहासादि से छेड़-छाड़ आरम्भ कर दी।

अतिथों को पंजासुर में रहते हुए एक महीना व्यतीत हो गया था। अन्त में जयशेखर ने बड़ी प्रतिष्ठा के साथ उन्हें मुलतान जाने की आज्ञा दी और आदर से दो चार दिनों के अनन्तर सुरपाल की सगाई करने के वास्ते कुल की रीति के अनुसार नारियल आदि का सगुन भेज दिया। जिसका यह तात्पर्य होता है कि--- "मैं तुमको अपनी कन्या ब्याहना चाहता हूँ।" भाट सब सामान लेकर गया और उचित समय पर उन दोनों का पाणि-ग्रहण कर दिया गया। यह चन्द्र व सूर्य की जोड़ी ग्रन्थि-बन्धन की रीति पूरी होने पर पंजासुर में ही रही।

उधर लाट देश के राजा ने जो बरसों से पंजासुर के राजा को नीचा दिखाने की ताक में लगा हुआ था, उसके पास युद्ध के लिये संदेशा भेज दिया। जयशेखर ने उसको समझाने के लिये अपने सेनापति को भेजा, परन्तु उसकी सहायता के लिये पीछे सुरपाल भी शत्रु के लिये पंजासुर से चला। किन्तु उसके पहुँचने के पहिले लाट देश की सेना ने गुजरात के सेना-

पति का बध कर दिया था, उसकी बची खुची सेना इधर उधर होने को थी। सुरपाल ने देखा, सेना के पॉव उखड़ने वाले हैं, क्षण मात्र में यहां कोई देखने में न आवेगा। उसने घोड़े को एड़ी न लगाकर झटपट गुजरात के झंडे को ऊँचा कर दिया और नष्ट भ्रष्ट पीठ दिखलाने के लिये उद्यत सेना को उसने गर्ज कर कहा—"मित्रो !

हर चार तरफ आग भड़कती नजर आये।
तलवार पै तलवार खड़कती नजर आये॥"

सुरपाल का शब्द सुनते ही उन अधमरों की जान में जान आई। सब को धैर्य्य हो गया। सब एक मत होकर शत्रुओं पर जा गिरे और क्षण मात्र में कार्य-सिद्ध की आशा बँध गई और शत्रु की आशा धूलि में मिल गई। यद्यपि उन लोगों ने भी पूरी वीरता से उनको धूलि में मिला दिया। संसार में धैर्य और वीरता अति उत्तम पदार्थ है। लाट देश की सेना भाग गई। कुछ दूर तक उनका पीछा किया गया, अधिक पीछा करना अनुचित समझ कर सुरपाल पंजासुर में लौट आया। जयशेखर ने कई कोस आगे आकर उसका स्वागत किया और उस विजय की खुशी से सारे शहर में आनन्द के बाजे बजने लगे। विमला भी अपने पति की कीर्ति को सुनकर अति प्रसन्न हुई।

विमला और सुरपाल का मिलाप सोने और सोहागे का था। दोनों एक दूसरे पर आसक्त थे। दो शरीर एक प्राण की उपमा इनमें पूर्ण घटती थी।

एक गुजराती कवि ने उनकी परस्पर प्रीति और सम्बन्ध का चित्र इस प्रकार खींचा है—"जैसे सीता को राम प्यारे थे,

जैसे रुक्मिणी को कृष्ण के साथ स्नेह था, जैसे दमयंती को नल का ध्यान रहता था वैसे ही विमला को सुरपाल की लगन थी।" अब सुरपाल स्वसुर से आज्ञा लेकर मुलतान आये और आनंद से जीवन व्यतीत करने लगे। पिता के स्वर्गवास होने के अनन्तर सुरपाल मुलतान के सिंहासन पर बैठे और राजा रानी दोनों अपने-अपने राज्य-कार्य को नीति से चलाने लगे।

शंकर गुजरात का कवि लिखता है कि विमला का विवाह होकर अपने पति के घर जाने के अनन्तर गुजरात की राजधानी सब प्रकार से उन्नति के शिखर पर पहुँच गई और उनकी उन्नति देखकर आस-पास के राजाओं को ईर्षा हुई। हा! खेद, शत्रुओं के विरोध ने उसको बरबाद करके ही छोड़ा। कल्याणी नगरी (लाट देश) का राजा "भूबड़" जिसको सुरपाल ने पराजय किया था, इसी चिन्ता में रहा करता था कि किस प्रकार जयशेखर को नष्ट भ्रष्ट कर दें। परन्तु इसको सुरपाल का भय था। इसने युद्ध में क्षण भर में इस तरह उसके छक्के छुड़ा दिये थे कि सुरपाल की वीरता का सिक्का उसके दिल पर बैठ चुका था। वह जानता था कि जब तक सुरपाल साथ है, पंजाबसुर का हाथ आना कठिन है। और इस विचार से उसने चाहा कि जयशेखर के और सुरपाल के बीच में भेद करा दें। अपनी आशा पूर्ण करने के लिये राजा लोग सब कुछ कर देते हैं। उसने वजीरों से सम्मति लेकर उसके नाम एक पत्र लिखवाया जिसमें जयशेखर से अलग हो जाने पर सुरपाल को अनेक प्रकार के निजी लाभ प्रकट किये थे। पत्र में यह भी लिखा था कि इस बड़े देश का कुछ हिस्सा इसके हिस्से में आ जावेगा। जिस समय उसका दूत पहुँचा, सुरपाल विमला के साथ बैठे हुए बातें

कर रहे थे कि पत्र राजा के हाथ में दिया गया। उसको पढ़ कर आश्चय हुआ परन्तु विमला की सम्मति लेने और उसके अन्तरीय भाव को जानने के लिये वह पत्र उसके हाथ में दिया गया। पढ़ते ही विमला की आकृत बदल गई। उसने क्रोध से पत्र को फेक दिया। राजा ने पूछा—"क्यों, क्या हाल है? राज-काज के व्यवहार में इस तरह की बातें सदैव आगे आया करती है। क्रोध की क्या आवश्यकता?" विमला ने उत्तर दिया—"इस पत्र का लिखा जाना दोनो के लिये लज्जा का कारण है। कोई पुरुष कभी ऐसे लिखने का साहस नही करता, जब तक उसको अच्छी तरह मालूम न हो जाय कि इसका असर अवश्य होगा। मैं नही जानती, इस काम में तुम से भूबड़ से क्या-क्या बातें हुई हैं। परन्तु ऐसे शब्दो में तुमको लोभ देने का यही प्रयोजन है और राम जाने तुम इस बात को नही जानते। मैंने उस सुरपाल के साथ शादी की है जो सज्जन, धर्मात्मा, शूर और वीर हैं। भूबड़ कहता है—"तुम्हारे बेटे को पंजासुर की गद्दी पर बैठाऊँगा।" वाह! वाह! मेरा पुत्र यदि कोई होगा भी तो अपनी प्रजा के रुधिर का मोल देकर लोभ, कपट वा अन्याय में फँसकर अपने सम्बन्धियो का राज इस प्रकार छीनने की फिकर न करेगा। मेरे पेट से कभी ऐसा पुत्र पैदा न होगा जो मुझको अनुचित कर्मों से स्त्रियों मे लज्जित करेगा। यह सत्य है. अब मैं गुजरात देश की नही रही हूँ, मुझे मुलतान से अधिक प्रीति होनी चाहिये। परन्तु मैं इस तरह रिशवत लेकर विश्वास-घात की सम्मति नही दूँगी। पुरुष की तृष्णा कभी पूरी नही होती। राजाओं के लिये संतोष करना बड़ा भारी अपराध है। उनको अपने राज्य बढ़ाने की चिन्ता में रहना धर्म है। मैं इन

सब बातो को जानती हूँ परन्तु बुरे काम का फल बुरा है। तुम अपने राज्य को बढ़ाओ, अपना प्रताप दिखाओ, शत्रुओ पर धावा करके उनके देश को छीन लो , परन्तु धम को हाथ से न जाने दो।" यह कहकर विमला उठी और घृणा से दूसरे कमरे मे जाने को तैयार थी। परन्तु सुरपाल ने हाथ पकड़ कर कहा—"विमला ! तू स्त्रियो में धन्य है। मै तेरी सम्मति पर नितान्त तत्पर हूँ। आज नही परसों सोच समझकर इसका उत्तर लिखूँगा, तुम शाँति रक्खो। विमला का पति कभी कोई ऐसा काम न करेगा जो संसार में घृणा की दृष्टि से देखा जावे।"

विमला ने अपने पति का हाथ पकड़ लिया और उसकी बातो को सुनकर प्रसन्नता प्रकट की।

दूसरे दिन विमला ने आप भूबड़ के नाम पत्र लिखवाया जिसका संक्षिप्त आशय यह था-"राजन् ! आपने जिस विचार को आगे करके मेरे साथ कृपालुता का व्यवहार करना चाहा है, मैं उससे अनभिज्ञ नही हूँ। मैं आप की कृपा का आदर करता हूँ। परन्तु जो वस्तु सुरपाल या उसकी सेना को अपना सहायक बना सकती है, वह केवल धर्म है। आप जानते हैं जयशेखर के साथ मेरे क्या-क्या सम्बन्ध है और वह आप के चुप रखने के लिये कम नही हैं।"

जिस समय वह पत्र वीर भूबड़ के सेनापति ने पढ़ा, उसको बड़ा पश्चाताप हुआ। उसने पत्र लेकर अपने राजा के हाथ में रख दिया और उसने असंख्य सेना लेकर स्वयं पंजासुर पर धावा किया। बार-बार लड़ाइयाँ होती रही. जिनमें सुरपाल और जयशेखर को सदैव पराजय मिलती रही। पर अन्त में यह दशा हो गई कि जयशेखर के दिल से गुजरात में शासन करने का विचार सर्वदा के लिये दूर हो गया।

उनकी सारी सेना कट गई, केवल कई एक चुने धीर पुरुषो का समूह साथ रहा। यह कुछ समय तक अपने राजा के लिए जान देते रहे। अन्त में जब यह सब मर गये, तब जयशेखर और सुरपाल को अपनी रानियो की जान बचाने की चिंता पड़ी।

जयशेखर की रानी गर्भवती थी। उसने एक दिन शत्रुओ से घिर जाने के अनन्तर सुरपाल से कहा—"अब समय समीप है, आप विमला और महारानी को बन मे किसी ऐसी जगह मे ले जाकर छुपा आओ जहाँ उनको किसी प्रकार का क्लेश न हो। सुरपाल दोनों को घोड़े पर सवार करके कुछ पुरुषो के साथ बन की ओर गये। और उनके साथ दस या बीस भील थे। जो राजभक्ति के लिये सदैव प्रसिद्ध थे। उन्होंने स्त्रियो को ले जाकर एक घने जंगल में भीलो के हवाले किया और आप फिर लड़ने के लिए रवाना हुए। परन्तु उन्हे खबर मिली कि जयशेखर ने लड़कर मैदान में जान दी और पंजासुर के किले पर भी शत्रुओ का अधिकार हो गया। इस खबर से उनकी सुध जाती रही। वह उसी समय जङ्गल की ओर लौटे जिससे स्वयं रानियों की रक्षा कर सकें। परन्तु जिस समय सुरपाल रानियों को छुपाने के लिये बन की ओर जा रहा था, भूबड़ के गुप्तचरो ने उसको देख लिया था और भूबड़-राजकुमार कर्ण नज़र बचाता हुआ उसके घोड़े के सुम के निशान की सहायता से थोड़ी देर में वहाँ पहुँच गया जहाँ सुरपाल और दोनों रानियां थी। भीलों की संख्या थोड़ी थी, वे उसका क्या सामना कर सकते थे! परन्तु जब इनको मालूम हो गया कि कर्ण अपने आदमियों के साथ इस ओर आ रहा है, तो उन्होने शीघ्रता से गर्भिणी

रानी को तो एक खोखले वृक्ष के नीचे ले जाकर छुपा दिया, परन्तु विमला को समय नही मिला कि वह उस स्थान को छोड़कर चली जावे। इतने में पीछा करने वाली सेना वहाँ पहुँच गई। भील विमला के चारों ओर हो गए, तलवार से तलवार बजने लगी, परन्तु दो चार पुरुष एक सेना के साथ क्या लड़ सकते थे। परम धार्मिक भील एक-एक करके मारे गये, केवल एक आदमी उन में से आपत्ति-कथा सुनाने के लिये बच रहा था। शत्रुओ ने विमला को घेर लिया। वह अपनी बेबसी की दशा को देखकर भयभीत हो गई। उस बेचारी के हाथ में तलवार नही थी, उसने चाहा कि किसी भील की तलवार उठाकर अपने कलेजे में भोक ले और अपने पतिव्रत को पूर्ण रक्खे। कर्ण उसकी इच्छा को मालूम कर गया। तलवार उसी वक्त उससे छीन ली गई। विमला पर शोक का पर्वत गिर पड़ा। उसके नेत्रों से आँसुओं की धारा बहने लगी। कर्ण उसके सौंदर्य को आश्चर्य से खड़े-खड़े देख रहा था। इस बात के कहने की आवश्यकता नही कि यह विमला है। क्योंकि विमला की सुन्दरता स्वयं उसका प्रकाश कर रही थी। कर्ण ने विमला से कहा—"सुन्दरी, यह शोक व्यर्थ है, अब तू मेरे हाथ में है।" विमला ने कहा—"यह कह दे मेरा पति कहाँ है? वह कहाँ गया, जो अपनी स्त्री की रक्षा नहीं करता।" कर्ण ने उत्तर दिया कि—"अब तुम उसका ख्याल छोड़ दो, इधर देखो।"

किसी नेक स्त्री के लिए इन बातों से अधिक कोई और वस्तु दुःखदायक नहीं होती। विमला के नेत्र क्रोध से लाल हो गये। उसने अपना हाथ मुख की ओर किया और कर्ण ने उसी समय उसकी अँगुली से हीरे की अँगूठी छीन ली और

कहा—"इस बात का अभी समय नही आया, यह प्यारी-प्यारी जान, संसार से इस भाँति बिदा नही हो सकती।" कर्ण ने विमला को पकड़कर एक महल में उतारा और उसकी सेवा वा रक्षा के लिये चतुर-चतुर स्त्रियाँ नियत कीं, जिससे कि वह आत्मघात न करे। और वह प्रतिदिन उसके पास आता और अपनी प्रीति प्रकट करता रहा। परन्तु उत्तर में धिक्कार की बातें सुन लज्जित होकर चला जाता था। एक दिन उसने नम्रता से कहा कि—"मैं तुमको क्लेश देना नही चाहता, जिस तरह तुम्हारी इच्छा हो वैसा कीजिये। मैं क़सम खाता हूँ कि मेरी ओर से कभी कठोरता नही की जावेगी, केवल मुझ को अपना दास समझो।" और विमला के उत्तर देने से पूर्व ही वह सिर झुकाकर चला गया।

यद्यपि कर्ण युवा था, उसके हृदय में इतना साहस था। उसने सोचा, अब यह कहाँ जा सकती है। समय इसके विचारों को बदल देगा और मेरी सेवा का फल अवश्य होगा। परन्तु यह उसकी भूल थी। सती पतिव्रता स्त्रियो का सङ्ग करने की किसमें सामर्थ्य है? वह तत्परता, यह धैर्य और यह धार्मिकता किसमें हो सकती है? फिर ईश्वर ऐसे भाग्यवानो का आप सहायक होता है। यह कई दिन के अनन्तर आकर विमला से फिर उसी प्रसंग की बातें करने लगा। विमला कहने लगी—"पर्वत चाहे पृथ्वी में चला जावे, समुद्र चाहे सूख कर मरु हो जावे, सूर्य्य चाहे पश्चिम में उदय होने लगे, चाँद अपनी प्रकृति को छोड़कर आग बरसाने लगे परन्तु विमला अपने सतीत्व को नहीं छोड़ेगी। कुछ चिन्ता नहीं, सिसक-सिसककर प्राण निकल जावें, हज़ारों आपत्तियाँ सिर पर पड़ें परन्तु विमला ने अपने प्राणपति के साथ जो

प्रतिज्ञा की है उसको नहीं भूलेगी। कर्ण, तू राजपूत है? मै देखती हूँ कि तेरे मे श्रेष्ठ गुण है, परन्तु तू इस व्यसन को छोड़ दे।"

अब कर्ण को निश्चय हो गया कि यह स्त्री जब तक सुरपाल के मरने की खबर न सुनेगी, मुझ से प्रीति नहीं करेगी, क्योंकि यह समझती है कि किसी न किसी दिन वह स्वयं इसे छुड़ाकर ले जावेगा। तब उसने इस दीन के सताने के लिये एक उपाय सोचा।

पंजासुर राजा के महल का एक राजपूत उसके साथ रहता था जो कि स्वार्थी और दुर्भाव वाला था और वह प्रतिदिन विमला के पास आया-जाया करता था। एक देश का होने के कारण विमला उससे वार्तालाप भी कर लिया करती थी। एक दिन वह रोता हुआ महल मे आया। विमला ने पूछा—"तुझ पर क्या अपत्ति आ पड़ी है, जो इस तरह से विलाप कर रहा है!" छलिया राजपूत बोला—"माई क्या कहूँ, राजा तो हमारा मर ही जा चुका था। बनमें जंगली शेर ने सुरपाल का भी काम तमाम कर दिया।"

इस खबर ने विमला को अतीव शोकातुर कर दिया। उसने कहा—"भाई तू क्या कहता है? क्या सच ही सुरपाल ने इस संसार से प्रस्थान कर दिया!" तब राजपूत ने कहा कि—"हाँ, ऐसा ही हुआ है।" देवी उसी समय उठ खड़ी हुई—

"जाय कहो तुम भागकर, प्राणपति दियो सुनाय।
बिन विमला के साथ पग, इक आगे ना जाय॥

प्राणनाथ ! तुमने इतनी शीघ्रता कर दी ! विमला को अन्तिम दर्शन भी नही दिये। कुछ शोक नही, जिस आशा पर विमला जीती थी उसका सम्बन्ध टूट गया।" उसने राजपूत से कहा—"भाई ! तू जयशेवर का नौकर वा मेरा जातीय भाई है, जा अभी चिता बनाने का प्रबन्ध कर दे और मेरी इस अन्तिम प्रार्थना को मान ले। विमला आज ही अपने पति के साथ मिलने के लिये जावेगी।"

राजपूत का दिल इन बातो को सुनकर काँप उठा। उसने कर्ण से सारा हाल कह सुनाया। वह आया और संसार की असारता को प्रगट करते हुए अन्तिम बार उससे कहा—

"सौभाग्यवती ! तू बहुत धर्मात्मा है, परन्तु यह आत्माघात है, ऐसा पाप न करना। कर्ण को अपना दास जान, इसकी सेवा तेरे दिल से इस शोक को दूर कर देगी।" विमला ने क्रोध से कहा—"अधम ! निर्लज्ज ! यह क्या बात है ? अब तक तेरे नेत्र नहीं खुलते ? तू नही जानता सीता को बुरी नज़र से देखने के कारण रावण का कुल नष्ट हो गया, द्रौपदी की अप्रतिष्ठा से कौरवों का वंश मूल से उखड़ गया और रेणुका के अश्रुओं ने २१ बार परशुराम के हाथ से क्षत्रियों का सत्यानाश करा दिया। मूढ़ ! आज्ञानी ! तू इस व्यसन से हट जा। परस्त्री को बुरी दृष्टि से देखनेवाला पुरुष नष्ट हो जाता है। अपनी वाणी को अपने वश में कर, नहीं तो तेरी बड़ी दुर्गत होगी।"

कर्ण ऐसा वीर क्षत्री इन वचनों को सुनकर भय में आ गया। वह कांप उठा परन्तु दिल की लगन बुरी होती है। उसने सोचा कि अद्भुत चिता की आग देखकर यह घबरा जावेगी उस वक्त मेरा कहना मान जावेगी।

विमला की आँखों में रुधिर भर आया। प्रकृति बदल गई,

आभा विशेष रूप प्रकाशित हो गई। अब वह सुकुमार स्त्री नही रही थी। इसको किसी का भय नही था। वह आप महल से बाहर निकल आई। उसकी आज्ञा से लकड़ियो का ढेर इकट्ठा किया गया। सारे प्रांत में धूम मच गई कि विमला तीसरे पहर सती होगी। मिल-मिलकर आदमी देखने के लिये चारो ओर से आने लगे। कृतघ्न राजपूत वा कर्ण दोनो का दिल धक-धक कर रहा था। वह यह चाहते थे कि किसी प्रकार चिता न तैयार की जावे और विमला से कह दिया जावे कि सुरपाल नही मरा। परन्तु किसी का साहस नही पड़ता था और सतीत्व बल उनसे इस तरह काम करा रहा था जैसे पुतलियां वाले की हाथ की कठपुतली नाचती है, वैसे ही सती का बल उनको नचाता था।

अब आप सुरपाल का भी वृत्तांत सुन लीजिये। पंजासुर राजा का मृत्यु का वृत्तांत सुनकर वह बन की ओर लौट आया। यहाँ सहचारियो की लाशें पड़ी थी, रानिया का कहो पता नही था। हे ईश्वर! यह क्या वृत्तांत हुआ? एक ओर तो राजा मारा गया, क्या अब स्त्री भी हाथ से चली जावेगी?

इतने मे एक भील देखने में आया। उसने कहा—"राजकुमार! यह तेरे संगी हैं, जिन्होने प्रकृति रूप से अपनी सज्जनता दिखाई। रानी तो बच गई और बन में सुरक्षित है, परंतु हा! विमला को कर्ण के सेवक पकड़ ले गये हैं। मैंने केवल इसी समाचार के देने के लिए अपने प्राणो की रक्षा की थी। मैंने विमला की रक्षा के अर्थ प्राण-त्याग नही किए और अधर्म का मार्ग स्वीकार कर लिया था, इसके प्रायश्चित के लिये अपने प्राण त्यागूँगा।" यह कहकर उसने अपने हृदय में कटार भोक ली और प्राण-त्याग दिये। यद्यपि यह भील मूर्ख

थे, परन्तु जिनको अपने धर्म-पालन में इतना प्रेम हो ; जो स्त्रियो की सहायता रूप धर्म को इस प्रकार समझते हो वह लाखों विद्वानों से अच्छे हैं !

सुरपाल ने झुककर चकित हो भील को देखा। घाव पूर्ण हो गया था। उसने बहुतेरा यत्न किया कि किसी प्रकार इसको सुध आवे, परन्तु यत्न निष्फल हुआ और वह क्षण-मात्र में मृत्यु को प्राप्त हुआ !

विमला के पकड़े जाने के समाचार से उसके शरीर में अग्नि प्रदीप्त हो गई । वह उसकी तलाश में निकला। कल्याणी नगरी के इधर उधर भेष बनाये हुए घूमता रहा कि कही प्राणप्यारी का पता लगे। स्त्रियो से मिल मिलाकर वह बराबर पता लेता रहा, परन्तु अब तक इसको छुड़ाने का समय नही मिला था। एक दिन उसने गाँव के आदमियों की ज़बानी सुना कि आज सुलतान की रानी चिता में जलाई जावेगी क्योंकि सुरपाल के मरने की ख़बर सुनकर वह जीती रहना नही चाहती है। दो-पहर का समय था। अब सती होने में थोड़ा सा समय शेष है। हाय सुरपाल ! तू क्या कर सकता है, तू शहर से बहुत दूर है। कैसे इतने मार्ग को काटेगा ? फिर भी शत्रुओ के हाथ से आप किस तरह अपनी जान बचावे। तीसरे पहर का समय है। लकड़ियों का ढेर लग चुका है। उसकी चोटी पर एक सुन्दरी शुद्ध वस्त्र पहने हुए निर्भयता से बठी हुई है। वह साधारण हिन्दू स्त्रियो की तरह ईश्वर की प्रार्थना कर रही है—"परमात्मन् ! तेरी जय हो। प्रभो ! जब मैं संसार में आऊँ सुरपाल मेरा पति हो। मैं उसके पाँव की धूलि को आँखों से लगाऊँ, पति-सेवा की प्रतिष्ठा मुझे हमेशा मिलती रहे।"

प्रार्थना के अनन्तर शहर के सब पुरुष और स्त्रियाँ सती के पाँव छूने के लिए और उसके हाथ से सुपारी आदि पाने की लालसा से आगे बढ़ते हैं। एक तरह का कोलाहल मच गया। विमला सबको प्रसाद बाँटती है। इस रीति के होने के पीछे चिता जलाने की आज्ञा दी जाती है। अग्नि संस्कार का समय आ गया। वह देखो आग लग गई। देखनेवालों में एक प्रकार का उद्वेग पैदा हुआ। इतने में दूर से आवाज़ सुनाई देती है—"ख़बरदार! जल्दी न करो।" एक सवार हवा की तरह घोड़ा दौड़ाये चला आ रहा है। ख़बरदार! जल्दी न करो। वह चिता के पास पहुँच गया। घोड़े से उतर कर एक छलाँग मारी और विमला को एक हाथ से पकड़कर चिता से बाहर लाकर रख दिया। लोगो को आश्चर्य हुआ, यह कौन पुरुष है जिसने एक जलती हुई सती को इस तरह चिता से अलग कर दिया है। विमला स्वयं हैरान हुई। बेसुध होकर एक दूसरे को ताक रहे हैं। इतने में सती देवी की दृष्टि उस पुरुष पर पड़ी। "प्राणपति! प्राणप्यारे फिर दूसरी बार विमला सुरपाल के गले से मिलकर रोने लगी। यह बातें मिनटों में होगईं, वर्णन करने में अधिक देर लगती है।

सुरपाल ने लोगों से कहा—"मैं सुरपाल हूँ। कर्ण! तू ने यह क्या किया? जहाँ ऐसा अधर्म है, क्या वह देश कभी उच्च दशा को पा सकता है?" केवल यही अक्षर उसकी वाणी से निकलने पाये थे कि उस स्थान में कोलाहल मच गया—"पकड़ो पकड़ो! जाने न पावे।" परन्तु धीर सवार उसी समय देखते-देखते घोड़े पर कूद गया, विमला को अपने पीछे बिठला लिया, और वहाँ से भाग निकला। बहुतेरा शत्रुओं ने पीछा किया, परन्तु सब व्यर्थ ही हो गया। वह अपने जंगली डेरे में आया

जहाँ जयशेखर की रानी रहती थी, और यहाँ आकर उसने आराम किया। पंजासुर ही केवल नही बल्कि मुलतान भी शत्रुओं के हाथ में हो गया था, और सुरपाल को कुछ समय तक बन में रहना पड़ा। यहाँ पुरुष वा स्त्रियो ने अपनी आपत्तियें कहीं और परमात्मा की कृपा का धन्यवाद करते हुए दम्पति ने प्रेम-दृष्टि के आँसू बहाये।

धीर वा साहसी पुरुष ईश्वर की कृपा से कभी निराश नही होते। सुरपाल ने शनैः-शनै भीलों की सेना इकट्ठी की और शत्रुओ को अपने देश से बाहर निकालकर फिर वह मुलतान में राज्य करने लगे।

जंगल में रूप सुन्दर (जयशेखर की रानी) से एक लड़का उत्पन्न हुआ, जिसकी पहाड़ के लोगो से पालना की गई। यह भी समय पाकर धैर्य वा तत्परता से वेष बदलकर चिरकाल तक अपने राज्य के वृत्तान्त को मालूम करता रहा। अन्त में सुरपाल की सहायता से उसका भी अपने राज्य पर अधिकार हो गया और इन सब के फिर अच्छे दिन आगये।

विमला ने कर्ण की कैद में अपना स्वास्थ्य खराब कर लिया था, उसका शरीर प्रतिदिन घटता जाता था। अन्त में एक दिन उसने दोपहर के समय अपने पति को बुलाया और कहा—"स्वामी, आज मेरा इस संसार से प्रस्थान होगा। मेरी प्रारब्ध में लिखा था कि मेरे शरीर का दाह-कर्म तुम्हारे हाथ से हो। इसी से ईश्वर ने मुझे जलती चिता से बचा लिया था। मैं सचमुच भाग्यवान हूँ क्योंकि आपके सामने संसार से जाती हूँ। आप मेरे लिए कुछ सोच न करना। संसार में हम लोग ऐसे ही जीती मरती रहती हैं। ईश्वर करे जब-जब मैं पैदा होऊँ तुम्हारे साथ ब्याही जाऊँ। लो अब मैं जाती हूँ। राम-

राम" ऐसा कहने के अनन्तर उसकी जिह्वा बन्द हो गई। आँखो की पुतली फिरने लगी। थोड़ी देर में विमला का शरीर शीतल हो गया। सुरपाल को बड़ा शोक हुआ, परन्तु कोई क्या कर सकता है?

साध्वी विमला! तू धन्य थी। अब हम मे तेरी ऐसी श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्रियाँ कहाँ है? जब अच्छी माताये नही रही, तो कोई भारतवर्ष मे कैसे उत्तम सन्तति की आशा कर सकता है?

४–भोगवती

दोहा

बुरे भले में भेद है, जिस बिधि दिन औ रात।
गृह लक्ष्मी निवास से, भये रहे किस भांत॥

भोगवती पूर्व देश के किसी राजा जयराज की पुत्री थी। यह अति सुन्दरी और अच्छे स्वभाव वाली कन्या थी। यह वेद, पुराण, न्याय, काव्य आदि सब शास्त्र जानती एवं लोक परलोक आदि सब बातों से अभिज्ञ थी। बालकपन से यह ऐसी समझदार थी कि प्रायः वृद्ध स्त्रियां धर्म के विषय में इसकी बातें सुनकर चकित रह जाती थी। कोई स्त्रियाँ तो कहती थी कि—"तू तो ऐसी बातें करती है जैसे मां के पेट से तूने सब कुछ सीख लिया है।" भोगवती मुसकराती और सब को अपनी बातो से प्रसन्न रखती थी।

इसके सौंदर्य का वर्णन सुनकर शूरसेन राजा ने चाहा कि यदि मेरे लड़के नागराज का विवाह भोगवती से हो जावे तो अच्छा है। एक श्रेष्ठ बधू आ जावेगी। नागराज 'यथा नाम तथा गुणः, था। जितनी भोगवती रूपवती थी. उतना ही यह कुरूप था। यह स्वभाव का चिड़चिड़ा दुःस्वभाव वाला, कट्टा मानों आबनूस का पुतला था। इसका विवाह भोगवती सुन्दरी से करना कौवे और हंसनी को एक पिंजरे मे बंद करना था। पहले तो यह सामान्य विचार था, परन्तु जब राजा महाराजा हठ पर आ जाते हैं, तो अपनी आशा पूरी करके ही छोड़ते है। जयराज ने राजा को बहुतेरा समझाया परंतु शूरसेन ने एक न मानी और कहा—"चाहे कुछ हो जावे, भोगवती अवश्य नागराज से ब्याह दी जावेगी।" उसकी बात न मानने मे युद्ध का भय था। शूरसेन के पास सेना बहुत थी, जयराज बेचारा निर्बल था, उसके सामने सामर्थ नही रखता था। निदान उसने अपनी पुत्री देनी स्वीकार कर ली। कहते है कि नागराज अति कुरूप था, इसीलिये अपनी ससुराल में जाने से उसको लज्जा आती थी। विचार यह था कि कोई कुछ कह न दे, इसलिये इतिहासों से मालूम होता है कि इसने विवाह के लिये तलवार भेजी थी। राजपूतो में क्या जाने पहले ऐसी रीति रही होगी कि अपने स्थान पर अपनी तलवार भेज देते होंगे। अस्तु, इस तलवार के साथ दयापात्र भोगवती के फेरे हुए। विवाह होने को तो हो गया परन्तु शूरसेन और उसकी रानी भोगवती को देखकर आप रो पड़ते थे। किन्तु वह सौभाग्यवती जिस दिन से ससुराल में आई, सास ससुर और सब दास दासियों को अपने सुभाषण और उत्तम आचार व्यवहार से प्रसन्न रखती थी। शूरसेन की रानी भोगवती

को नागराज के पास जाने नहीं देती थी, उसे भय था कि कहीं उसका रूप देखकर वह डर न जावे और भोगवती से उसके पति का वृत्तांत कहते भी उसे लज्जा आती थी। इसी प्रकार बहुत दिन बीत गये। भोगवती विस्मित थी कि यह विवाह कैसा है? उसको आश्चर्य था, परन्तु जब उसको मालूम हुआ कि मैं ही प्रायः पति से अलग रक्खी जाती हूँ, तो यह जानकर इसको बड़ा शोक हुआ। निदान उसने सास से प्रार्थना की कि—"तुम्हारा भय बिलकुल अनुचित है, मैं बालक नहीं हूँ। और तुम कब तक ऐसा विचार रक्खोगी? मुझे जरा भी फिकर नहीं है।" सास ने बधू को गोद में लेकर प्रेम के आँसू बहाये और कहने लगी—"बेटी! क्या कहूँ, मेरा पुत्र तेरे योग्य नहीं है, न केवल उसकी शक्ल भयंकर है किन्तु उसका स्वभाव भी बड़ा कठोर है। कैसे मेरा दिल मान सके कि तेरी जैसी देवी को उसके पास भेजूं।" भोगवती ने सास के पाँव छूकर कहा—"माता! स्त्री अपने पुरुष-स्नेह को आप समझती है, स्त्री अपने पुरुष की अर्धांगी है। मेरी दृष्टि में वह पूजा के सुयोग्य है। मैं किस तरह उन से भय वा घृणा करूँ? परमात्मा ने कुछ सोच समझकर इस तरह के सम्बन्ध को पैदा किया है। आप छाया को कब तक शरीर से अलग रख सकती हो? छाया शरीर से कभी भी अलग नहीं होती केवल अँधेरे में दिखाई नहीं देती। मैं तो अपने पति की दासी हो चुकी हूँ, जब से मैंने प्रतिज्ञा की है। आप जरा भी सोच न करो, मुझे पति की सेवा से न रोको।"

रानी को भोगवती की बातें सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सारी बातें राजा और अपने पुत्र को सुनाईं और निज पुत्र को अपनी विवाहिता स्त्री से मिलने के लिये उद्यत किया।

भोगवती बड़ी श्रद्धा और भक्ति से अपने पति के पास गई और उसको सेवा से उसने प्रसन्न कर लिया। ग़रीब नागराज यद्दि कुरूप था परन्तु औरा के बर्ताव ने उसको और भी दु स्वभाव बना रक्खा था। वह मन ही मन में सारे संसार से घृणा करने लगा था। उसका जीवन भी जान पर भारी था। कोई ऐसा साथी वा मित्र न था जिससे वह अपने मन का हाल कहता और वह इसके दुःख का भागी होता। भोगवती के मधुर और असाधारण बर्ताव को देखकर मन ही मन में पहिले वह लज्जित हुआ करता था, किन्तु देवी ने अपने उत्तम बर्ताव से उसकी झिझक को दूर कर दिया और वह उस उत्तम रानी की प्रीति को स्वर्ग समान समझने लगा। भोगवती उसका सर्वस्व बन गइ। इस सुन्दरी की सम्मति का यह फल हुआ कि व्यसनों में बड़ा फेर पड़ गया। नागराज अब आदमी बन गया। एक दिन राजकुमार नागराज पूछने लगा—"सती मुझसे सब लोग डरते वा ग्लानि करते है। तू क्यो नही डरती ?" उसने कहा—"कोई अपनी खास जाति से घृणा नही करता है। तुम तो मेरे लिये देवता हो, मेरे प्राणपति हो, मेरे सब कुछ हो, मैं तुम से ग्लानि करके कहाँ जाऊँगी ? जिन लोगों को तुम से ग्लानि है, वह तुम्हारे गुणों को नहीं जानते। मैं समझती हूँ और उनकी कदर करती हूँ।" इन बातों को सुनकर नाग का सा कठिन स्वभाव का पुरुष झुका कि अपनी स्त्री के पाँव को छूकर उपकार प्रकट करे, परन्तु इसने हाथ पकड़ कर कहा—"मुझे क्या नरक में ढकेलोगे ?" इस तरह रात दिन उसके साथ रहकर भोगवती ने उसको कुछ का कुछ बना दिया। माता पिता विस्मित हुए कि यह क्या फेर फार हो गया ? पहिले शूरसेन का इरादा था कि

शरीर की समस्त अस्थियं, त्वचा, रुधिर बदल जाता है, परन्तु हम से एक साधु कहता था कि फेर-फार केवल साल दो साल के बीच होते हैं। भोगवती ने प्रकृति-नियम की सफलता से अपने पति में विपर्य पैदा कर दिया और वह बड़ा धर्मात्मा राजा बन गया। एक बार नागराज के मन में गोदावरी की यात्रा करने का विचार हुआ। इसने भोगवती को भी साथ लिया और वहाँ कुछ समय तक ठहर कर ऋषियो के सत्संग से लाभ उठाता रहा। यहाँ इसकी आकृत में और भी भेद हो गया और जब यह जब उधर से लौटा, तो भाई ने विरोध का झन्डा ऊँचा कर रक्खा था। राज्य की इच्छा ने इसको उन्मत्त कर दिया था। शहर के पास रास्ता में इसने नागराज के साथ छेड़-छाड़ की। राजा को यह कृतघ्नता देखकर बड़ा क्रोध आया और आशा थी कि थोड़े काल में लड़ाई की नौबत आ जाय और दोनों ओर रुधिर की नदियाँ बहने लगें। नागराज ने मन में ठान ली थी कि कृतघ्न को विरोध का स्वाद चखाया जावे। जिस समय वह घोड़े को एड़ी लगाकर भाई के सन्मुख आया, उधर से वह भी मारने पर तत्पर था। इतने में खेमा की ओर से एक सुकुमार स्त्री दौड़ती हुई आकर दोनों घोड़ो के बीच खड़ी हो गई और कहने लगी—"मैं तुमको कभी न लड़ने दूंगी, यदि युद्ध करना ही है, तो पहले स्त्री पर हाथ चलाकर फिर दूसरे का रुधिर बहाओ।"

इन सीधे सादे वचनों ने जादू का असर किया। चमकती हुई तलवारें यद्यपि म्यान में नहीं गईं, परन्तु नीचे की ओर अवश्य झुक गईं। दोनो हैरानी से उस स्त्री को देखने लगे। यह भोगवती रानी थी। इसने देवर की ओर ध्यान देकर कहा—"भाई! इस लड़ाई से क्या लाभ है? तुमने पहिले क्यों नही

प्रगट किया। तुम भूल कर रहे हो। भाई को मारकर तुमको आनन्दन ही मिलेगा, प्रजा तुमको ज़िन्दा नही छोड़ेगी। इसके सिवायइस लड़ाई मे तुमको कब जय की आशा हो सकती है। उचित है कि यह तलवार किसी अच्छे काम में लाई जावे।" यह कहकर वह उसी समय पति की ओर हुई ओर कहने लगी—"प्राणपति! भाई बलवान् है धिक्कार है उस राज पर जो भाई के रुधिर से मिले—

भाई बड़ी चीज़ है, कहती बचन पुकार।
भाई सन अवसर नहीं, भुजबल यह संसार॥

आज यद्यपि यह सामना करने को तत्पर है, परन्तु तो भी यह तुम्हारा छोटा भाई है और बेटे के समान है। इसने भूल अवश्य की है। जिस वंश में भाई बध किये जाते हैं उसकी क्या उन्नति होगी? इस पर क्षमा करो। लड़ने झगड़ने के लिए और शत्रु कम नही है। मेरा कहना मानो। तलवार को स्यान में करो।"

भोगवती इस तरह बातें कर रही थी कि जैसे कोई देवता शान्ति से आज्ञा दे रहा हो। नागराज ने उसी समय तलवार को स्यान में कर लिया और भाई ने भी वसाही किया। लड़ाई की नौबत नही आई। जब दोनो अपने-अपने खेमे को लौटने लगे, तो भोगवती ने कहा—"तुम में से किसी ने अब तक कोई बात नही की। मैं तुम दोनो से प्रार्थना करती हूँ कि कम से कम तीन दिन के लिए लड़ाई बन्द रक्खो।" खेमा मे पहुँच कर राजा ने भोगवती से पूछा कि "अब क्या करना चाहिए?" उसने कहा—"वग़ैर सोचे समझे कोई

काम करना बड़ी ग़लती है। युवा भाई नहीं समझता कि इस की भलाई किस बात में है। तुम एक काम करो, कल ध्रुव चरित्र नाटक का तमाशा कराओ और उसके देखने के लिये अपने भाइयो को उनके साथियों के समेत बुला भेजो।" ऐसा ही किया गया और जब तमाशा दिखाने वाले उस दृश्य का नाट्य करने लगे जहाँ ध्रुव अपने सौतेले भाई के लिये जान देने को तत्पर हो गया था, तो नागराज के चारो भाइयो से न रहा गया, वे दौड़कर नागराज के पाँव पर गिरे और कहने लगे—"प्रभो, हम कृतघ्न है, आप हमारे राजा, भाई और पिता हो। यह तलवार उपस्थित है, इससे हमारी गर्दन काटकर हमें पाप से मुक्त करो।" नागराज ने चारो को अपने गले से लगा लिया और दो भाइयों को एक ओर और दो भाइयों को दूसरी ओर बैठाकर कहने लगा—"तुम्हारी मृत्यु में हमारा नाश और तुम्हारे जीने में हमारी वृद्धि है। कोई चिन्ता नही, मैं तुम्हारा प्रबन्ध कर दूंगा।" दूसरे दिन पॉचो भाई राजधानी की ओर आये। राजा रानी हाथी पर थे, चारों भाई घोड़ों पर इधर उधर सवार थे। शहर वाले इस विरोध से अनभिज्ञ नहीं थे, उन्होने इस सम्मति को सुना तो वे बड़े प्रसन्न हुए।

इस आनन्द के स्मरण मे नागराज ने शुरू से पुनः राज्यप्राप्ति का उत्सव किया और भोगवती की सम्मति से चारों भाइयों को चार इलाक़ो की सूबेदारी दी गई। राजा वा रानी चिर-काल तक आनन्द से राज करते रहे।

रानी की बुद्धिमत्ता ने नाग के अंतरीय और बाह्य भावों को पवित्र बना दिया। नागराज की दृष्टि में संसार स्वर्ग बन गया।

सच है जहाँ ऐसी पतिव्रता स्त्रियाँ होती हैं, वहाँ आप ही परमात्मा की कृपा से ऋद्धि-सिद्धि हो जाती है।

दो०—कुल विनाशकारी यह, आपत थी अति भारी ।
धन्यवाद जगदीश को, जिसने दी है टारी ॥

भोगवती तू धन्य थी। तेरी बुद्धि धन्य थी। ईश्वर करे तेरी जैसी बुद्धिमती मातायें, इस भारत-भूमि को फिर सुशोभित करें।

५—मरीचि

सुन्दर रूप अनूप है, सद्गुण दीन महान ।
धर्म्म पतिव्रता है घना, विद्या परम सुजान ॥
दृढ़ प्रतिज्ञ अरु सहनता, सुन्दर शील प्रताप ।
जिस विधि हरि ने इस दियो, कहीं न होत प्रकाश ॥

मरीचि सीकम देश की रहनेवाली थी जो भूटान वा भूपाल के पास है। इसके पिता का नाम यशलाल-सिंह था जो सीमा पर अमन-चैन स्थिर रखने के लिये सरकार की ओर से नियत था। यह जाति का लिपचा था, जो उधर अपनी सुन्दरता के कारण प्रसिद्ध हैं। और यह जाति भी समता-अभिलाषी, दयालु और अतिथि सेवी समझी जाती है। इनमें कदाचित् ही लड़ाई झगड़े होते हैं। यह अधिकतर अमन से रहते हैं, तो भी इससे यह न समझना चाहिये कि ये लोग भीरु और मानुषीय गुणों से हीन हैं। समय के फेर-फार से पुरुष

की दशा सर्वदा बदलती रहती है। यह किसी के वश की बात नही। परन्तु जहाँ लिपचा जाति के लोग बड़े प्रशंसनीय हैं, वहाँ वे स्वतन्त्रता को भी चाहते हैं। और प्रायः प्राणियों का मूल्य दे देकर उन. विचारों ने आज तक अपनी जातीय स्वतन्त्रता स्थिर रक्खी थी। मरीचि इस उत्तम जाति में से थी। यह सौंदर्य्य, शील, स्वभाव मे पूर्ण थी। बीस वर्ष की आयु हो चुकी थी परन्तु ब्रह्मचर्य के क्लेश को सहारती हुई आज तक इसको संसार के व्यवहारो का ज्ञान नही था। जैसे उसकी बाहरी आकृति थी, वसे ही उसका अन्तःकरण भी पवित्र था। और अपने धर्म के अनुसार बुद्धदेव के मन्दिर में रहकर पूजा और धर्म-पुस्तको के विचार मे मग्न रहती थी। यशपालसिंह ने बाल्यावस्था ही से इसकी शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध कर रक्खा था। केवल वह बौद्धमत से ही परिचय नही थी, प्रत्युत एक हिन्दू संन्यासी से हिन्दुओ के दर्शन और शास्त्र भी संस्कृत भाषा मे इसने पढ़ लिये थे और इसके पास हिन्दी और संस्कृत की पुस्तको का एक अच्छा भण्डार हो गया था। वह मन्दिर के इधर-उधर मीलो तक चम्पा-चम्पा भूमि से परिचित थी और इसका पिता इसको श्लाघनीय ब्रह्मचारिणी समझकर इसकी प्रतिष्ठा करता था। इसके सिवाय पहाड़ की और लड़कियो को प्रायः अधिक स्वतन्त्रता होती है और युवावस्था के अनन्तर कठिनता से माता पिता उनके व्यवहार में हस्ता-क्षेप करते है। जहाँ मरीचि में धैर्य, धर्म्म की प्रीति कूट-कूट कर भरी थी, वहाँ सांसारिक माया से अपरिचित होकर भी समयानुसार विचार से इसनेइ तनी योग्यता हासिल करली थी कि आवश्यकता पर अपनी रक्षा कर सके। पहाड़ी स्त्रियाँ चतुर होती हैं। ये शस्त्र-धारिणी नही होती, पर इनको पूर्ण

अधिकार है कि ये अपने हाथ में तलवार या छुरी रख सकें। पहिले इनमें अन्याय सहन करने की समर्थ्य कम थी, उपवास से मर जाना स्वीकार था; परन्तु पराधीन होना स्वीकार न था। और जब कभी किसी दुष्ट ने कुदृष्टि या अन्याय से कर पसारा कि स्त्रियों की छुरी ने उसी समय दुराचारी के पेट को फाड़ दिया और वह सिसककर वहाँ ही ढेर हो गया। सोकम की पहाड़ी कन्याये विशेष करके कभी इस प्रकार के व्यवहारों मे क्षमा नही करती थी। जान रहे या जाय, कलंक का टीका न लगने पाये, न कोई पुरुष इनके ऊपर सख़्ती कर सके। मरीचि की लड़ाई उन पांच अभ्यन्तरिक शत्रुओं से रहती थी जो बाह्य या हिन्दू मत के अनुसार बड़े बलवान् और प्राण लनेवाले अन्यायी है। वहाँ की ब्याही स्त्रियाँ चाहे निःशस्त्र रहे, परन्तु बौद्ध-मन्दिर की कन्याओ का जूड़ा छुरा से कभी खाली नही रहता था और इसलिये मरीचि भी इससे खाली न थी।

एक दिन की बात है कि मरीचि अपनी बहिन के साथ घूमने फिरने गई हुई थी। जब वह सैर से वापस आई, तो उसे एक अँगरेज़ घूमता हुआ देखने में आया। मरीचि अपने घर जाती थी परन्तु अँगरेज़ ने उसे आवाज दी और वह निर्भयता से उसके पास चली आई। साहब बहादुर खुश होगये और मरीचि के उस विशेष सौन्दर्य को देखकर विस्मित हुए। ग़रीब स्त्री दो चार मिनट के बाद लौटने को हुई, तब साहब ने हौंसला करके कहा—"मैं अब इस देश के शासन पर नियत हुआ हूँ। मैं तुमको बहुत पसंद करता हूँ और मैं बहुत खुश होऊँगा यदि तुम हमेशा मेरे पास रहो।" मरीचि चुप-चाप कुछ न बोली। तब साहब ने फिर विशेष हौंसला पाकर

लोभ वा धमकी देना आरम्भ किया। मरीचि ने उस पर भी कुछ उत्तर न दिया। तब अँगरेज़ हँसता हुआ उसके पास आने लगा। मरीचि उसकी चेष्टा देखकर पीछे हटने लगी। परन्तु साहब ने बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया। मरीचि ने इसका हाथ झटक दिया और जब वह अधिक दुष्टता करने लगा, तो मरीचि ने साहब से कहा—"दुष्ट! खबरदार! अलग रहना, मेरे शरीर में हाथ न लगाना। नही तो बड़ी लज्जा वा आपद् उठायेगा।" साहब उन्मत्त होगया। बोला—"सुन्दरी! तुमको किस वस्तु को इच्छा है; तुझको अब कोई मेरे पंजे से नही बचा सकता।" यह कहकर उसने मरीचि का बायाँ हाथ पकड़ लिया। उसने कितना हाँ छुड़ाना चाहा, परन्तु सुकुमार अबला ही थी, बेबस होकर उसने अपने केश से छुरे को निकाल कर उस दुष्ट की छाती में भोंक दिया। और बोली—"तू नही मानता है। तो ले, अधम पामर! तेरे लिये यही दंड है।" अँग्रेज पृथ्वी पर गिर पड़ा। मरीचि निर्भयता से अपने घर चली आई। यह उत्तम पद की वीरता है जो एक स्त्री अपनी लज्जा बचाने के लिये बर्ताव में ला सकती है। और मरीचि इस वीरता और निर्भयता के लिये अत्यन्त धन्यवाद की पात्र है। सती स्त्रियें इस प्रकार अपने सत को बचा लेती हैं। हिंदू स्त्रियों के मन में यह बना रहता है कि जो स्त्री धर्म की रक्षा करती है, वह स्वर्ग को जाती है, इसमें ज़रा सा भी संदेह नहीं है। इस समाचार के कई दिनों के अनन्तर अँग्रेज़ सीकम को अपनी चालबाज़ी से नीचे लाकर कई यत्नों से इसको जीतने की फिकर में रहने लगे।

इस मन्दिर पर भी छापा लगाया गया जहाँ मरीचि रहती थी। कई एक सवार स्त्रियें अपने देश वा धर्म की रक्षा के लिये

शत्रुओ से लड़ने को निकली। मरीचि भी उनमें से एक थी। मैदान में कई बार लड़ाई हुई। इन वीर स्त्रियो ने बड़ी वीरता दिखलाई। एक दिन अँग्रेज़ी सेनाधीश बहुत से सवारों को आते हुए देखकर विस्मित हुआ। इसको आशा नहीं थी कि इस प्रांत में इतने आदमी इकट्ठे हो सकेंगे। उसने घोड़े को आगे किया और कुछ दूर निकल गया था कि घोड़े का क़दम फँस गया। अँग्रेज़ बेबस होकर नीचे कूद पड़ा और उसी समय सनसनाती हुई तीर ने उसके पाँव को ज़ख़्मी कर दिया और वह लँगड़ाने लगा। इसका हाथ तलवार के मुट्ठे पर गया और वह चारो ओर देखने लगा कि किस शत्रु ने मुझको घायल किया है। इतने में एक युवती स्त्री सिपाही के से वस्त्र और वेष पहिन हुए देखने में आई। उसके एक हाथ में कमान और दूसरे में कटार थी और दौड़ती हुई उसकी ओर बढ़ी। कप्तान को बड़ा आश्चर्य हुआ, इसने तलवार हाथ मे लेकर उससे कहा—"ऐ बहादुर लड़की! मैं स्त्री पर खड्ग उठाना नही चाहता, अच्छा है कि तू अपने शस्त्र को अभी रख दे।" लड़की ने क्रोध से उत्तर दिया—"रे दुष्ट! तूने हमारे धर्म-मन्दिर को गिराना चाहा, यदि अपनी जाति की रक्षा का विचार होता तो दूसरी बात थी, इस समय धर्म और मन्दिर का प्रश्न है, मैं तुमको जीता न छोड़ूँगी।" अभी यह बात चीत समाप्त नहीं हुई थी कि सामने की ओर से बहुत सी स्त्रियें उस ओर झुक पड़ी। अँग्रेज को जान बचाना सचमुच कठिन होगया। इसने क्षमा माँगते हुए कहा—"ऐ वीर कन्या! मैंने बेसक अधर्म का काम किया। आज कृपा करके मेरी जान बचा दो।" वे बोली—"पाँव तले आये हुए साँप को न कुचलना बड़ी मूर्खता है। जाल में फँसे हुए घड़ियाल को छोड़

देना, अज्ञानता है। मक्कार ! पाखण्डी ! तू किसी तरह दया का पात्र नही है।" साहब ने कहा—"मैं तुम्हारी शरणागत हूँ भिक्षा मागता हूँ।" स्त्री बोली—"क्या चाहता है ? जल्दी कहो। हम लोग शत्रुओ के व्यवहारों को कभी-कभी भूल भी जाती हैं।" इसने कहा—"यह बतादो कि तुम किसकी लड़की हो, तुम्हारे पिता का क्या नाम है और आज कल लड़नेवाली कौन जाति है ?" उत्तर दिया गया—"लड़नेवाली सब स्त्रियें हैं, मेरा पिता यशपालसिंह कहलाता है।" साहब ने तलवार टेक कर कहा—"अब जो कुछ तुम को अभीष्ट है वह करो, तुम को अख़्त्यार है।" मरीचि के मन में इसकी बातें सुनकर दया आई और उसने कटार को ज़मीन पर रखकर कहा—"अच्छा तुम अब चले जाओ। हमारे देश में कभी आने का फिर साहस न करना।" और अँगरेज़ की तलवार हाथ में लेकर वह और स्त्रियो के साथ मन्दिर को चली गई। यह सच्ची बात कोई बहुत प्राचीन नही है, अब तक प्राय लोगों को स्मरण है। इस तरह की वीर स्त्रियें इस देश में हुआ करती थी। खेद है कि अब वह वंश लुप्त होते जाते है और कौन जाने फिर भी कभी भारत में ऐसी सच्ची वीर वा उत्तम स्त्रिये उत्पन्न होगी ?

६—कलावती

कर्णसिंह राजपूताना के किसी प्रान्त का राजा था कलावती उसकी रानी थी। जिस समय अला-उद्दीन खिलजी जैसलमीर का विनाश करके चित्तौड़ की ओर दूसरी बार युद्ध करने के लिये आ रहा था, तोकर्णसिंह के प्रान्त से होकर वह गयाथा।

अलाउद्दीन आप ही प्रचण्डाग्नि स्वरूप था। जिधर मुख करता, उसी ओर देश को मानो विदग्ध करता जाता था। जिधर से उसकी सेना जाती थी, समस्त ग्राम जलाते जाते थे। खेत उजाड़ दिये जाते थे और सहस्रो जीवों के सिर गाजर मूली की भाँति काटते जाते थे। दो तीन मुग़लिये बादशाहो के सिवाय समस्त मुसलमान बादशाह अन्धेर मचा गये है, जिनका चिन्तन करने से रोमटे खड़े हो जाते है, परन्तु वे जो काम कर गये हैं, धर्म की आड़ में कर गये हैं। अलाउद्दीन को यवन-धर्म से इतना प्रेम नही था। वह चाहता था कि किसी और धर्म को अपने नाम से प्रचलित करें। इसने भी ऐसे उपद्रव किये हैं कि इतिहास पढ़नेवाले सदा इसके नाम को घृणा से याद करते रहेंगे। यह बड़ा धीर बादशाह हुआ है। इसने अपनी लूटमार केवल मध्यप्रदेश वा राजपूताना ही तक प्रवृत्त नही रक्खी थी, वरंच इसकी सेना चारो ओर युद्ध वा खून करती हुई टिड्डी दल की भाँति सेतुबन्ध-रामेश्वर तक चली गई थी, और वहाँ भी अन्याय के स्मरणार्थ सैकड़ों मन्दिर तोड़कर एक मसजिद बनाई गई थी। जिस समय अलाउद्दीन लूटमार करता हुआ कर्णसिंह के राज्य से निकला, तो राजपूत राजा इसके सामने को उचित समझकर सन्मुख हुआ। बड़ी लड़ाई हुई। राजा दुर्बल था। सेना भी उसकी बहुत थोड़ी थी। यद्यपि वीरता उसकी घूटी में पड़ी थी परन्तु राजपूत एकता के गुणों से अनभिज्ञ हुए चले जाते थे और इसलिए इतनी सेना भी इकट्ठा नही कर सकते थे जो समय पर शत्रुओं का सामना करती। तो भी कर्णसिंह ने अपनी वीरता वा धैर्य से शत्रु के छक्के छुड़ा दिये। अलाउद्दीन थोड़े से राजपूतों से एक चढ़ाई की राह में पराजित होकर बड़ा विस्मित

हुआ। उसने निशाना ताक कर कर्णसिंह पर वाण मारा, तीर के लगते ही कर्णसिंह पृथ्वी पर आ गिरा। आजकल की तरह सेना का जय-पराजय केवल सरदार के ऊपर ही निर्भर होता था। कर्णसिंह के खाली घोड़े को देखकर कोलाहल मच गया था। प्यादे सवार सब निरुत्साहित हो गये, विचारे कर्णसिंह को तो सुध ही नही थी। मुसलमान इसी घात में थे कि किसी तरह जख्मी राजा पकड़ा जावे। इसलिए वह निर्भयता से आगे बढ़े आ रहे थे, परन्तु शुभ काम यह था कि उस की रानी कलावती उसके साथ रणभूमि में आई हुई थी। इस ने अपने पति को उसी समय डोली में सवार किया और आप उनके स्थान पर आकर सिपाहियों को उत्साहित करने और लड़ने के लिये तैयार करने लगी। वह आप शस्त्र धारण किए हुए थी और उसके धनुष से जो बाण निकलते थे एक दो का काम करके छूटते थे। कौन भीरु पुरुष था जो ऐसी वीर स्त्री के आधीन रहकर पीठ दिखलाता। घोर संग्राम होने लगा, क्षणमात्र में दोनों ओर के सहस्रों वीर पुरुष पृथ्वी पर लेट गये।

कई मुसलमान डोली की ओर झुके। रानी ने तलवार हाथ में लेकर उन सबको मार गिराया और इसी प्रकार सायंकाल तक बराबर लड़ती रही। संध्या समय जब लड़ाई बंद हो चुकी, तो अलाउद्दीन की फौज ने तो ठहरने के बजाय राजपूतों के भय से आगे को प्रस्थान किया और वहाँ के राजपूतों ने अपनी राजधानी में आकर दम लिया।

कर्णसिंह के शरीर से तीर निकाला गया, परन्तु वह महा क्लेश में था। वैद्यों को उपचार के लिए बुलाया गया। उन सब ने मिलकर कहा—"तीर विष से भरा हुआ था, अब कोई

उपाय नही हो सकता। हाँ यदि किसी तरह कोई पुरुष राजा के विष को चूस ले तो यह बच जावे। परन्तु विष का चूसने वाला निश्चित ही मर जावेगा।" कर्णसिह को स्वीकार नहीं था कि कोई पुरुष इसके लिए प्राण दे (न जाने उस समय में विष चूसने का शस्त्र न होता होगा)।

थोड़ी रात जाने पर जब राजा सो रहा, कलावती ने उन को दवा सुंघाकर बेसुध कर दिया और आप अपने मुख से उसका विष चूसने लगी।

कर्णसिह को खबर तक नही हुई और उसने थोड़े समय में उसका सारा विष चूस कर फेक दिया। राजा तो बच गया। परन्तु प्रातःकाल को दो तीन घड़ी दिन चढ़ने के पीछे कलावती की दशा बिगड़ने लगी। जब उसने देखा कि मेरा समय समीप आ गया, कर्णसिह से कहा—"राजन्! मैं आप की स्त्री और प्रजा हूँ। मेरे जैसे सहस्रो जीव आप पर न्योछावर हों। मुझे स्वीकार नही था कि मेरे जीते जी मेरा प्राणपति इस संसार से कूच करे। मैंने आपका विष चूस लिया है और अब उसके असर से थोड़ी देर में मेरा इस संसार से कूच होगा। आप अपना पाँव मुझे दीजिये ताकि मैं आपका चरण पकड़े हुए इस शरीर को त्याग करूँ।"

सती पतिव्रता रानी का समय आ चुका था। कोई ऐसा उपाय न था जो इसको मृत्यु के हाथ से बचा सके। इसके पातिव्रत भाव को देखकर दुर्बल कर्णसिह ने चरण आगे कर दिया। उसने दोनो हाथो से पकड़ कर मस्तक मे लगाया और इसी प्रकार थोड़ी देर में प्राण त्याग दिए। कर्णसिह अच्छा हो गया, परन्तु अपनी प्यारी रानी के वियोग से सदैव चिन्तातुर रहा। कुछ तो विष का असर था और कुछ

इस बात ने उसके मन को क्लेश पहुँचाया जिससे इसके बाद उसके होठो पर मुसकुराहट कभी नही देखी गई। उसके कोई संतति नही थी, परन्तु लोगो के बहुत कहने पर भी इसने पुनर्विवाह नही किया और वृद्धावस्था पाकर संसार से सिधार गया। यह इस प्रकार की श्लाघनीय देवियाँ थी जिनके कारण भारत उन्नति पदवी पर आरूढ़ था।

७--सुलोचना

लोचना रावण के वीर पुत्र मेघनाथ से ब्याही हुई थी। यह शांत स्वभाव, दयालु और पतिव्रता थी। सास की सेवा इस प्रकार करती थी मानो उसकी पुत्री थी, ननदो के साथ बड़ी प्रीति वा प्रेम से बर्ताव करती थी। उस समय पातिव्रत धर्म में यह आपही अपना दृष्टांत थी। जिस समय रावण, महाराणी सीताजी को हर कर ले आया, सुलोचना ने बहुत शोक किया। इसने अपने पति इन्द्रजीत मेघनाथ से कहा—"आपके पिता ने यह बड़ा उपद्रव किया है, श्रीरामचन्द्रजी की स्त्री महाराणी सीताजी पतिव्रता हैं, और उत्तम बर्ताव और सौंदर्य्य में अपने सदृश्य दूसरा नही रखती हैं। पति के पास न होने से पर-स्त्री को इस प्रकार हर लाना बड़ा पाप है। यद्यपि मुझे बड़ों की निन्दा करनी उचित नही, परन्तु मुझे जान पड़ता है कि इस देश वा इस वंश का नाश होगा। क्योंकि वृद्धों का बचन है कि पर-स्त्री की इच्छा से कुल का नाश हो जाता है। लोक परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं। जो

साधुओ से लड़ाई करे, गुरू की आज्ञा को न माने, जीव हिंसा करे, ईश्वर की निन्दा में प्रसन्न हो, सद्ग्रन्थो का त्याग करे और दूसरे की बहू बेटी को बुरी दृष्टि से देखे, वह इस संसार में मनुष्य के आकार का पशु है। पृथ्वी उसका भार नही संभार सकती। प्राणपति ! क्या लंका में कोई बुद्धिमान् मंत्री नहीं रहा है जो रावण को समझाकर धर्म-मार्ग पर चलाये ?"

मेघनाथ ने अपनी स्त्री की बात सुन कर कहा कि—"तू सच कहती है, तेरी बात सत्य है। मैं अच्छी तरह से समझता हूँ, परन्तु क्या करूँ ? पिता-पुत्र का सम्बन्ध विलक्षण है। और यही नही मैं रावण की प्रजा भी हूँ, यदि उसकी आज्ञा न मानूं तो राजा का और लोगों पर इसका बुरा प्रभाव पड़ेगा। यदि चुप रहता हूँ तो भी नही बनता। मंत्री दीवान सब समझा चुके। मेरी माता ने भी बहुत समझाया, पर सबका कहना व्यर्थ हो गया। मैं उसका पुत्र हूँ, नीति कहती है कि पिता और राजा की भूल में भी सहायता दी जावे, इसलिये मैं ईश्वर की इच्छानुसार जान बूझकर उसकी हठ के अनुसार काम कर रहा हूँ। वंश जावे चाहे, परन्तु नीति के विरुद्ध मुझसे काम न होगा। सुख दुःख, मित्र शत्रु सब अपने कर्म के फल हैं। तू कुछ फिकर न कर, जो होने वाला है वह होकर रहेगा। उस पर किसी का वश नहीं चलता। पुरुषों को ईश्वरेच्छा पर प्रसन्न रहना चाहिये।"

रावण की इस भूल का परिणाम लड़ाई हुई। भगवान् रामचन्द्रजी समुद्र पर पुल बाँधकर लंका पहुँचे और वानर वा रीछों की सेना ने रण में वह कर्त्तव्य दिखाए कि राक्षसों के छक्के छुड़ा दिये। रावण के कई पुत्र मारे गये, जब कुम्भकरण भी मारा गया, तो मेघनाद इन्द्रजीत की बारी आई। यह

बड़ा छलिया और वीर था। इधर उधर के वीर योधा इसका नाम सुनकर कॉप उठते थे, आते ही उसने कई बार अयोध्या-पति की सैना को पीछे हटा दिया। किन्तु वीर लक्ष्मण के तीर ने इसके सिर को धड़ से अलग कर दिया। यह लङ्का का दीपक था, रावण जानता था कि रामचन्द्रजी की सेना में इसके बाहु-बल के समान बलवान् एक भी पुरुष नही है। परन्तु लक्ष्मण ब्रह्मचारी ने इसको मिट्टी मे मिला दिया।

सुलोचना अपने रंग-महल मे अपनी सखियों के साथ बात-चीत कर रही थी। उसको भी निज पति के बाहुबल पर पूरा विश्वास था और कहती थी कि—"आज मेघनाथ अपने पौरुष के गुण को दिखा रहा होगा।" इतन मे खबर आई कि वह मारा गया। सुलोचना उसी समय हिंडोले से पृथ्वी पर गिर पड़ी और बेसुध हो गई। सखियों ने मुख पर जल छिड़का, पंखा किया इसने ऑखं खोल दी और अपने पति की कृपाओं और उनकी वीरता को स्मरण करके रोने लगी—"प्राणनाथ! तुमन कैसे शीघ्र प्राण त्याग किया? तुम्हारे सदृश तो संसार में कोई नही था, तुमने सहस्रो राजाओं को नीचे किया था। तुम कहते थे, कि मुझे मारने वाला संसार में कोई नहीं। मेरे को वह पुरुष मार सकेगा। जिसने अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया हो; रामचन्द्रजी की सेना में तो कोई ब्रह्म-चारी नही है। वहाँ सब बिवाहित सपत्नीक हैं। प्राणपति! क्या तुम्हारी बात मिथ्या थी?" सामने से एक आकाशवाणी हुई—"इन्द्रजीत को सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण ने मारा है। यह वह धर्मात्मा पुरुष है जिसने विवाह होने पर भी कभी स्त्री का मुख नही देखा है। निद्रा, क्षुधा, तृष्णा इसके वश में हैं। जिसका मन व वाणी सच्चाई पर आसक्त है। यह सच्चा इंद्रियो

को जीतनेवाला इन्द्रजीत को मारने का कारण हुआ।" यह सुनकर सुलोचना फिर रोने लगी। सारे महल में कोलाहल मच गया। पशु पक्षी नेत्रों से अश्रुपात करने लगे और महल शून्य दिखलाई देने लगे। अन्त में सहेलियों ने 'यह संसार असार है।' कहकर उसकी तसल्ली की, और सुलोचना धैर्य धारकर उठी और सखियों को साथ लेकर रावण की सभा में गई। मन्दोदरी उसकी सास भी साथ थी। सुलोचना ने ससुर का पाँव छूकर कहा—"महाराज! आज ईश्वर ने मेरा सौभाग्य छीन लिया, मेरा प्राणपति संसार से चला गया। आज्ञा हो तो मै भी परलोक गमन की तैयारी करूँ?"

विलाल करती हुई बधू को देखकर रावण के शिर पर शोक का पहाड़ टूट पड़ा। वह शोक से कहने लगा—"सुन्दरी! तू शोक मत कर। अभी मैं तेरे पति का बदला लेता हूँ।"

इसने रावण की ओर से मुख फेर लिया। मन्दोदरी उसके अभिप्राय को समझ गई। उसने बधू से कहा—"प्यारी! मै क्या करूँ? तू आप रामचन्द्रजी के पास जा और उनसे अपने पति का सर माँग ला। वह सज्जन, सुभाषी, स्त्री-व्रत और नीतिज्ञ हैं, तेरा कभी अपमान नही करेंगे। इसके सिवाय विभीषण तेरा ससुर भी वहाँ विद्यमान है।" यह सम्मति सुन कर रावण दंग हो गया और सुलोचना उसको सिर झुकाकर रामचन्द्रजी के शिविर (तंबू) की ओर चली। मेघनाथ के मारे जाने के अनन्तर दोनो ओर की सेनायें अपने-अपने स्थानों में जा चुकी थी, केवल एक ही आध घन्टा व्यतीत हुआ होगा कि सुलोचना निर्भयता से रामचंद्रजी के पास गई। गुप्तचरों ने पहिले ही खबर दे रक्खी थी। जब यह सन्मुख आकर प्रणाम करने के अनन्तर रोने लगी, तो रामचन्द्रजी ने कहा—"पुत्री,

तू क्या चाहती है ? जिस बात की आवश्यकता हो मेरे से कहो।" उसने कहा—"महाराज ! मैं अपने पति का सिर चाहती हूँ ताकि उसको गोद में लेकर मैं भी संसार से प्रस्थान करूँ।" रामचन्द्रजी ने कहा—"पुत्री, तू धन्य है। तू स्त्रियो मे शिरोमणि है।" तेरे पातिव्रत, धर्म की कथा सर्वदा लोग खुशी से सुना करेंगे।" उनका निर्देश पाकर सुग्रीव दौड़ा और ढूँढ कर सिर उठा लाया। पति का सिर देखते ही सुलोचना मुक्त कंठ से रोने लगी—"प्राणनाथ ! यह तुम्हारी क्या दशा है ? अभागी सुलोचना को यह दिन भी देखना था।" यह कहना था कि मेघनाद के सिर में चेष्टा उत्पन्न हुई। उसने नेत्र खोले और खिलखिला कर हँस पड़ा *। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। सब ने सुलोचना की दीनता की दृष्टि की सबके नेत्रों में से अश्रुधारा बह निकली और उस समय पर रामचन्द्रजी ने उसको कुछ उपदेश किया था। सुलोचना सिर को गोद में लेकर समुद्र के किनारे गई। मेघनाद का धड़ वहाँ था। सिर को धड़ से मिलाकर उसने रख दिया फिर चिता तैयार की गई और वह सती पति के सिर को गोद में लेकर उसमें जा बैठी। आग भड़कने लगी। वह वीर स्त्री धीरता से बैठी रही। सब से पहिले कपड़ों में आग लगी, फिर उसके केश जलने लगे, हाथ पाँव से लपटें निकलने लगी और वह उसी

---

* आज कल के पदार्थ-विद्या के जाननेवाले भी कहते हैं कि सिर के काटे जाने पर कुछ काल तक प्राण छिपे रहते हैं और जब कोई परम प्यारे की ध्वनि कान मे पहुँचती है तो उसमे स्वयं चेष्टा हो जाती है। अमेरिका में दो तीन समय पर ऐसे व्यवहार देखने मे आये हैं। (देखो आर्य-गज़ट सन् १९०५)।

तरह बैठी रही और सब के देखते-देखते पति के शरीर के साथ जलकर भस्म हो गई।

८—रेणुका

त्रे ता युग में पर्वसेनजी रेणुका नामक राजा हुआ है, रेणुका उसकी प्यारी कन्या थी जो कि अतीव शील स्वभाव वाली, धर्म्मात्मा और साध्वी थी। पिता ने पुत्री की सम्मति लेकर उसका विवाह जमदग्नि नाम ऋषि से कर दिया। यह अपने समय में बड़ा विद्वान् निगमागम का जाननेवाला था। रेणुका की छोटी बहिन राजा सहस्रार्जुन से ब्याही थी, जो उस समय का बड़ा प्रतापशाली चक्रवर्ती राजा था और इसकी शूरता का डंका बज चुका था।

रेणुका से वसु, परशु आदि पाँच पुत्र उत्पन्न हुए थे। इनमें परशु जिसका नाम अब इतिहासो में परशुराम कहा जाता है, सबसे अधिक बली और विचारशील था। उसको बाल्यावस्था मे माता ने शिक्षा दी थी।

रेणुका बहुत श्रेष्ठ थी परन्तु राजपुत्री होने के कारण उसने पुरुषत्व की उत्पति क्षत्रियो की वीरता वा शूरता में ही समझ रक्खी थी। यह बड़ी गौरव अभिलाषिणी थी, इसलिये उसकी शिक्षा का स्वाभाविक परिमाण यह हुआ कि परशुराम में क्षत्रित्व के सम्पूर्ण गुण प्रादुर्भाव हो गये। रेणुका बात-बात

में उसको समझाया करती थी कि माता पिता का मान सत्कार पुत्र के लिये बहुत आवश्यक है। इसलिये परशुराम वीर, निर्भय और स्वतंत्र-स्वभाव हो गया। वह माता पिता की आज्ञा मानना सब से मुख्य धर्म समझता था।

एक समय में ऋषि और उनकी स्त्री में किसी कारण से विवाद होगया। जमदग्नि ने अपने पुत्रो से कहा कि तुम अपनी मॉ का सिर काट लो, परन्तु वे उद्यत न हुए। तब परशुराम के आने पर वही प्रार्थना उससे भी की गई। माता का मुख देखकर परशुराम उसी समय तलवार हाथ में लेकर पिता की आज्ञा पूर्ण करने को उद्यत हुआ। परन्तु ऋषि ने उसके आज्ञा-पालन-गुण को देखकर कहा—"बेटा! तेरी इस आज्ञा-पालन से मैं प्रसन्न हूँ, जो कुछ तू मॉगेगा मैं देने को तैयार हूँ।" उसने कहा—"मेरी माता को प्राण-दान दीजिये।" ऋषि ने प्रार्थना मान ली और फिर प्रसन्नता से वह सब लोग आश्रम में रहने लगे।

एक बार ऐसी बात हुई कि सहस्रार्जुन जमदग्नि के यहॉ आकर अतिथि हुआ। अतिथि-सत्कार आर्य-मत में बड़ा आवश्यक वा पवित्र समझा गया है। ऋषि-पत्नी ने अनेक प्रकार का सत्कार किया। परन्तु कामधेनु गौ को देखकर राजा ललचा गया।

राजा क्षत्रिय पने के अभिमान में मग्न था। उसने समझा कि इस दीन ऋषि की उसके सामने क्या गणना है। इसलिये जिस गौ के दूध से आश्रम के रहनेवालो की पालना होती थी उसको इसने हठ से छीन लिया और अपनी राजधानी को चला गया। जमदग्नि बेचारा देखता ही रह गया, उससे क्या हो सकता था। निदान, जिस समय इसका पाँचवाँ

पुत्र परशुराम घर पर आया, तो उससे सब वृत्तान्त इसने ब्योरेवार कह सुनाया। परशुराम क्रोध-रूप था, पिता का अपमान और गौ के हरे जाने के विचार ने उसके शरीर में आग लगा दी। उसके नेत्र क्रोध से लाल हो गये और उस समय उसने अकेले ही सहस्रार्जुन पर धावा किया। गौ के नेत्र से आँसू बह रहे थे। आश्रम का वियोग इसके लिये शोक-कारक था। परशुराम राजमहल के पास पहुँचे और इन्होने ऊँचे स्वर से यह कहा—"अभिमानी क्षत्रा! तुझको अपने बाहुबल का ऐसा अभिमान है कि निर्धन ऋषियों को आज से तू जंगल मे रहने नही देगा? तू उनके पशु आदि भी छीन लाता है? तूने ऋषियों को अत्यन्त दुर्बल समझ रक्खा है? अज्ञानी! यह विचार मत कर, कि जीवन व्यतीत करने वाले साधू नितान्त निकम्मे होते है। मै उनकी सहायता में तुझसे लड़ने आया हूँ। तूने मेरे पिता की गौ बल से ले ली है! तूने उसको अप्रतिष्ठा की और उसकी वृद्धावस्था का विचार नही किया और न तुझको आश्रमवालों पर ही दया आई? यदि पराक्रम, है तो एक-एक मेरे सामने आओ।" कार्तवीर्य्य का पुत्र सन्मुख हुआ और युद्ध होने लगा। परशुराम में बड़ा बल था। राजकुमार मारा गया और फिर ऋषि ने वाणों से साहस्रार्जुन के हाथ काट दिये और गौ को फिर वह आश्रम में ले आया। सहस्रार्जुन के लड़कों को परशुराम के हाथ से पराजय पाकर चुपका रहना स्वीकार न था। जिस समय परशुराम वन में लकड़ियाँ चुनने गये थे, सहस्रार्जुन के लड़के अपने पिता का बदला लेने की नियत से आश्रम में आये और उन्हें मौका मिल गया। यद्यपि जमदग्नि और किसी से बल में न्यून नही थे परन्तु तप के कारण वे दुर्बल

थे। राजपुत्रो ने झपटकर उनको तलवार से बध कर दिया। जिस समय वह सिसक रहे थे निरन्तर राम-राम कहते रहे, जिसका यह अभिप्राय था कि यदि परशुराम वहाँ होता, तो यह बात न होती ; अर्थात् उन्होने मरते समय बेटेको बदला लेने को कहा । रेणुका पति की मृत्यु से सिर वा छाती पीट रही थी। सिर के बाल बिखरे हुए, नेत्रों से आँसू की धारा बह रही थी वह चिल्ला-चिल्लाकर परशुराम का नाम ले रही थी और रो-रोकर कहती थी कि क्षत्रियो से पिता के वध का बदला ले। इतने मे परशुरामजी वन से लकड़ी लेकर लौट आये। पिता रुधिर मे लिपटे पड़े थे, नाड़ी छोड़ चुके थे, शरीर शीतल हो गया था। रेणुका शव के साथ रो रही थी, परशुराम को देखकर वह और भी चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगी। और कहा—"परशुराम ! देख तेरा पिता इस दशा मे पड़ा है। तेरी माता इस प्रकार विधवा हो गई है। तू क्षत्रियों के अपराध को क्षमा न कर।" इस प्रकार रोती हुई देवी रेणुका ने इक्कीस बार हाथ से अपनी छाती कूटी और इक्कीसवी बार चीख मारकर रोई। फिर उनके नेत्र बन्द हो गये और वह भी पति के साथ परलोक को सिधार गई।

परशुराम पर शोक का पहाड़ गिर पड़ा। परन्तु उस समय धैर्य धरकर उसने माता पिता का संस्कार किया। जब उसको समय मिला, वह शत्रुओं से बदला लेने के लिए वन की प्रदीप्त अग्नि की भाँति घर से बाहर निकला। कौन इसके सन्मुख हो सकता था ?

जिधर मुख करता था, पैर के पैर साफ़ हो जाते थे। इस की माता ने इक्कीस बार अपनी छाती कूटी थी और इक्कीस ही बार इस बहादुर पुरुष ने क्षत्रियो का सत्यानश किया।

वीरो की वीरता धूल मे मिल गई और वह अपना पौरुष भूल गये। वह वीर अभिमानी जो आते हुए वाण के सन्मुख छाती निकाल कर लड़ते थे, परशुराम के नाम से काँपने लगे। इसने सचमुच पृथ्वी को क्षत्रियो से निर्बीजकर दिया।

सहस्रार्जुन की सन्तति का नाम निशान तक न रहा और समन्त-पंचक मे उसने इतने क्षत्री बध किये कि उनके रुधिर से पाँच झीलें भर गईं।

यह क्षत्रियो का इतना शत्रु हो गया कि क्षत्री इसके नाम तक से चिढ़ जाते थे। निदान जब यहाँ तक नौबत पहुँची तब कश्यप ऋषि ने समझा-बुझाकर परशुराम को शीतल किया और वह ऋषि की सम्मति से महेन्द्र पर्वत पर तप करने चला गया। परशुराम का आचार व्यवहार क्या था इस पर विचार करने की आवश्यकता नही। जैसी रेणुका ने उसको शिक्षा दी थी और जैसी प्रकृति थी वैसा ही वह बन गया था। माता के वचनो का प्रभाव लड़को के आगामी जीवन पर कैसा पड़ता है, यह हमको परशुराम के जीवन से भली भाँति निश्चित होता है। धन्य हैं वे मातायें कि जो शिक्षित और माता पिता की कीर्ति स्थापित करने वाली सन्तति उत्पन्न करती हैं।

जननी जनती भक्तजन, दाता दानी शूर।
नाहिं तो रहती बाँझ ही, पुत्र भला नाहिं कूर॥

९—सत्यवती

भेलूँ दुःख अपार मैं, होनी होय सो होय।
प्रभु ऐसी किरपा कीजियो, प्रीतम मरण न होय॥

बङ्गाल के मालदा नामी ज़िला में एक विष्णुभक्त रामानन्द स्वामी रहता था। यह चैतन्यदेव का शिष्य था। इसको रईसों की ओर से जागीरें मिली हुई थीं, जिनकी आमदनी से बहुत से साधु वैष्णवों का पालन होता था। रामानन्द अपने सत्स्वभाव और साधुवृत्ति के कारण केवल सब का प्रिय ही न था, परंच सबकी दृष्टि में माननीय था।

इसकी स्त्री का नाम सुनीति था और वह भी अपने पति के सदृश पवित्र और धर्मात्मा थी। इस स्त्री का यह नियम था कि जब तक घर के सब लोग अतिथि समूह भोजन न पा लेते, तब तक यह पानी तक नहीं पीती थी। इसी सौभाग्यवती से एक लड़का और लड़की उत्पन्न हुई। लड़की का नाम प्रभावती और लड़के का नाम परमानन्द था। सत्यवती, जिसका वृत्तान्त इस पुस्तक में लिख रहे हैं, इसी परमानन्द की धर्म-पत्नी थी। गृह में ईश्वर की दया थी। किसी वस्तु की न्यूनता नहीं थी। सब लोग आनन्द वा हर्ष से निर्वाह करते थे, परन्तु ईश्वर की महिमा अपार है। किसी के दिन एक से सदैव नहीं रहते। कभी दिन है, कभी रात है, कभी सुबह है, कभी शाम है। इसी प्रकार प्रारब्ध के जीवन में दुःख का चक्र चलता रहता है। प्राणी की एक समान दशा कभी नहीं रहती।

दुर्भाग्य से बंगाल में बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा। दाना पानी की

कमी में लोग कुत्तो की मौत मरने लगे। उस समय देश में अंग्रेजी सरकार का ईस्ट इण्डिया कम्पनी का राज्य था। पृथिवी की पैदावार कुछ नही थी और कम्पनी को अपने महसूल और कर उगाहने की पड़ी हुई थी। पैदा हो या न हो, इस का उसे कुछ विचार नही, परन्तु किसान सरकार का मामला अवश्य पूर्ण करे। देवीसिंह नामक एक पुरुष उस महकमा का अन्यायी अध्यक्ष था। उसने सहस्रो के घर उजाड़ दिये, भले पुरुषो का नाश कर दिया, स्त्रियो के आभूषण बिकवा दिये, और स्त्री वा पुरुषो को नग्न करके बड़ा दण्ड देने लगा। उनको कठिन से कठिन दण्ड दिये जाने लगे। सारे देश में हा-हाकार हो रहा था, परन्तु किसी को कुछ नही चलती थी। यद्यपि रामानन्द की भूमि का कुछ मामला नहीं लगाया गया था, परन्तु उसके घर बहुत आदमी ग़रीब और पराधीन रहा करते थे। वह दरिद्रियो के भोजनाच्छादन का भी प्रबन्ध किया करता था। कम्पनी के नौकर समझने लगे कि यह मालदार है, अतः इससे भी मामला लेना आरम्भ कर दिया। रामानन्द के मन में भय उत्पन्न हुआ कि ऐसा न हो कि अन्यायी लोग उसकी प्रतिष्ठा भंग करें। लाचार बेचारे ने रानी भवानी नामी उस समय की प्रसिद्ध रईसा से प्रयत्न करके पचास हजार रुपया ऋण ले लिया। और झगड़ा करने के पीछे तीन वर्ष का लगान भी दे दिया। परन्तु देवीसिंह का लालच बढ़ता गया। इसकी आज्ञा से रामानन्द का घर लूट लिया गया और उसको पकड़ने की आज्ञा दी गई; क्योकि इसने अपनी निर्धनता प्रकट कर दी थी। यह दीन बेसुध था और भयभीत हो गया। परमानन्द ने पिता से कहा—"आप फिकर न करें मैं यहाँ रहूँगा। आप माता, बहिन

और स्त्री को लेकर रंगपुर मे किसी शिष्य के घर चले जावें। मैं यहाँ अकेला रहूँगा और जो आपत्ति आवेगी उसको झेलूँगा।" रामानन्द अपने कुटुम्ब को साथ लिये हुए रंगपुर को जा रहा था कि देवीसिंह के सिपाहियो ने उसका अपमान करना आरम्भ किया। एक ओर रामानन्द बूढ़ा सिसक रहा था, दूसरी ओर उसके घर की स्त्रियाँ ढाड़े मार-मार कर रो रही थी। परमानन्द इस दशा को न सह सका। उसने क्रोध से कहा—"पिशाच! अधम! वह क्या करता है? तुझको ईश्वर का भी भय नही है? निरपराध स्त्रियो को भी कष्ट देने से नही डरता।" यह कहकर वह छुरी लेकर देवीसिंह पर झपटा। यदि सिपाहियो ने पकड़ न लिया होता तो उसी समय देवीसिह की समाप्ति हो जाती। परमानन्द क़ैद कर दिया गया और काँटोवाले दण्डो से उसको मारना आरम्भ किया गया, परन्तु उसका चेहरा क्रोध से लाल बना रहा। रामानन्द और स्त्रियो को तो छोड़ दिया गया परन्तु परमानन्द पर जो आपद् पड़ी उसका लिखना कठिन है। वह भी अत्याचार का कुछ विलक्षण समय था। घरवालो ने उस दुखिया के दुःख का वृत्तान्त सुना, परन्तु कोई क्या कर सकता था। सत्यवती पर तो शोक का पर्बत गिर पड़ा। वह रात दिन शोकातुर रहती थी। रंगपुर में कई सप्ताह व्यतीत हुए। परन्तु बेचारे परमानन्द के छुटकारे का कोई उपाय न सूझा।

रंगपुर में भी देवीसिंह के सिपाही रहते थे। उनको खबर मिली कि एक सत्यवती नामी बड़ी सुन्दरी स्त्री आई हुई है। क्योंकि देवीसिंह बड़ा दुराचारी पुरुष था। उसके नीच स्वभाव नौकर भी इसके प्रसन्न रखने के लिये सदैव बुरे उपाय सोचते रहते थे।

सत्यवती की आयु उस समय पच्चीस वर्ष की थी और यद्यपि उस समय की आपत्तियों से उसका मन दिन रात चिन्तातुर रहता था फिर भी उसके अद्भुत सौन्दर्य्य को कोई हानि नहीं पहुँची थी। यह जान पड़ता था कि वह अभी तेरह चौदह वर्ष से अधिक आयु की नही है। जब रामानन्द को विदित हुआ कि देवीसिंह के दुर्विनीत नौकर इसकी प्रतिष्ठा भंग करने को उद्यत हुए हैं, तो वह दीन अपनी स्त्रियो को साथ लेकर दीनाज़पुर के जंगलो को चला गया। जंगलों के दुःख क्या कम होते हैं, वहाँ भी उनको आराम नही मिला। सत्यवती ने अपने मन में दृढ़ नियम कर लिया कि यदि दुष्टो के पंजे से छुटकारा नही होता, तो अंत में वह जान पर खेल जावेगी और धर्म के लिये प्राण दे देगी।

अब मृत्यू दिन निकट हैं, जीवन की नाहिं आस।
अन्त यही निश्चय किया, धरा हृदय विश्वास॥

इस तरह तीन वर्ष व्यतीत हो गये। अब यह ख़बर मिली कि कम्पनी के सिपाही इधर भी आ रहे हैं। रामानन्द ने यह समाचार सुनकर कहा—"सत्यवती बेटी, तू इन दोनों विश्वासी सेवकों को साथ लेकर काशी में निर्वाह करने को शीघ्र चली जा, क्योंकि वह दुष्ट वन में भी अमन से नहीं रहने देंगे। यह नौकर धर्मी और सत्पात्र हैं।"

सत्यवती ने भय से उत्तर दिया—"पिताजी, अब इस जीवन की अभिलाषा नहीं है। पति के प्राण अत्याचारी शत्रुओं से नही बच सकेंगे। विधवा का जीना ही क्या होता है। आप मेरे माता पिता हैं। लड़की को माता पिता की गोद से भय

नही होता, मैं आपको छोड़कर कहाँ जा सकती हूँ। क्या आप जानते नही हैं कि काशी में भी रक्षा के विना रहना कठिन है। वहाँ भी मेरे कर्म साथ होंगे। यहाँ तो आपको देखकर धैर्य रहता है, वहाँ किसका सहारा होगा। यदि आपको कैद करेंगे, तो मैं भी कैद में रहूँगी और वही आपके साथ दुःख सहूँगी।" रामानन्द ने उत्तर दिया—"बेटी! देवीसिंह ने अच्छे-अच्छे कुलों की स्त्रियों की प्रतिष्ठा भंग कर दी है। इस बात का मेरे को भय है।" सत्यवती ने अपने आँसू पोछकर कहा—"आप अपनी बेटी के बल को नही समझते। देवीसिंह कुछ वस्तु नही है। उसकी क्या सामर्थ्य है कि मेरी ओर कुदृष्टि से देख सके। मैं उसको कुछ नहीं समझती। आप तनिक भी चिंता न करें। मेरी कीर्ति मेरी जान के साथ है। मुझे शोक केवल इस बात का है कि मेरी प्रारब्ध ने आप सब को आपद् में डाल रक्खा है।" यह कहकर सत्यवती रोने लगी और शोक के आक्रमण से बेसुध होकर भूमि पर गिर पड़ी। जब होश में आई तो वह विलाप करने लगी—"परमात्मन्! तूने मुझे ऐसी सुन्दरता क्यों दी? क्या और कोई भाग्यशाली स्त्री इसकी अधिकारिणी नहीं थी?" इस प्रकार शोक करने के अनन्तर उसने कैंची से अपने सिर के समस्त केश कतर दिये। रामानन्द ने समझा कि यह आत्मघात न कर बैठे। उसने उसका हाथ पकड़ लिया और तसल्ली की बातें करने लगा। सत्यवती के मन को उस समय बड़ा शोक हो रहा था। उसने आकाश की ओर हाथ उठाकर कहा—"परमेश्वर! स्त्रियें पुरुषों के साथ जलकर भस्म हो जाती हैं। मैं कैसी मन्द भागनी हूँ कि मेरा पति दुःख और आपद् भोगकर संसार से सिधार जावे और

मैं जीती रहूं। शोक यह है कि उसकी भी ठीक-ठीक खबर नही मिलती, नही तो मै क्षण-मात्र में जीवन को त्याग दूं। इस दशा से मृत्यु ही बहुत अच्छी है। रामानन्द को अपने पुत्र की बधू का क्लेश देखकर बड़ा दुःख हुआ। उसने कहा—"बेटी, तू ऐसी चिंता न कर, तुझको जैसा अपने पति का विचार है, मुझे उससे कम नही है। परन्तु क्या करूँ अपना कुछ वश नही चलता। भला तो इसमे है कि हम सब दैव पर भरोसा रखकर किसी प्रकार समय को व्यतीत करें।"

सत्यवती ने देखा कि रामानन्द के साथ रहने से उसके लिये कल्याण नही है। लाचार उसने एक वृद्ध स्त्री और एक पुरुष के साथ वन में जाकर एक पत्तों का झोपड़ा बना लिया और वही वह रहने लगी। गर्मी आई तो उसने वन के फल-फूल खाकर दिन व्यतीत कर दिये। जाड़ा आया तो शरीर ढाँपने के लिये कम्बल का टुकड़ा भी उसके पास नही था, केवल एक धोती उसका शरीर छुपाने के लिये बाक़ी रही थी। परमात्तन्! आपकी लीला विचित्र है। अभी कल का दिन था कि उसका निर्वाह कैसी अद्भुत उत्तम रीति से होता था, आज तन ढाँपने के लिये कपड़ा तक पास नही है। देवीसिह के सिपाही यहाँ आये और रामानन्द को पकड़कर ले गये। उस दीन की वृद्धा अवस्था का भी विचार न किया। सत्यवती ने खबर को सुना, पर वह क्या कर सकती थी। एक तो परवश, दूसरे अबला स्त्री। उसने अपना सिर पीट लिया और रोने लगी। थोड़ी देर के अनन्तर वह सोचने लगी कि—"मैं अब क्या करूँ? अब तो मेरे लिये संसार में कोई सहारा नही रहा। मैं किसके आश्रय से जीऊँ। यह जीवन अब दुःख-

दाई है। आत्मघात करना पाप है। अधर्म की मृत्यु दूसरे जन्म में और भी आपत्ति लाती है।"

वह इसी तरह चिरकाल तक विचार करती रही। मानो ऐसा विदित होता था कि कोई सामर्थ्य इसके मन मे प्रविष्ट होकर कह रही है।

क्या नाहिं अबला कर सके, क्या नाहिं सिन्धु समाय।
क्या नाहिं पावक में जरे, काल काहिं नाहिं खाय॥

इसके मस्तक पर झुर्री पड़ गई। उसने सोचा कि "क्या स्त्री की सामर्थ्य निर्मर्य्यादं है। क्या सचमुच स्त्री को शक्ति कहा गया है। मैं भी तो स्त्री हूँ। यदि स्त्री शक्ति है, तो मैं अपने पति और ससुर को छुड़ा लाऊँगी और कोई पुरुष मुझे न रोक सकेगा। मैं जीत आऊँगी। ईश्वर मेरी सहायता आप करेगा।"

सत्यवती ने नये मर्दाने वस्त्र पहिन लिये। बूढ़ी दासी और दो विश्वस्त नौकरों को उसने साथ लिया और वह उस कारागार (जेलख़ाने) के फाटक पर गई, जहाँ उसका ससुर क़ैद था। रामसिंह नाम का एक हिन्दुस्तानी कारागार का प्रबन्धकर्त्ता था। सत्यवती ने झुककर उसे प्रमाण किया। रामसिंह ने सिर से पाँव तक उसको देखा। उस युवा के सारे--अंग सौंदर्य्य के सच्चे साँचे में ढले हुए थे। आश्चर्य्य से उसने पूछा--"छोकरा तू कौन है? यहाँ क्यों आया है? क्या काम है?" फिर उस लड़के ने कहा—"प्रभो! मेरा नाम नानक है। गया के ज़िले का रहने वाला हूँ। मेरा पिता पुरनियाँ के ज़िले में ज़िमीदार था। वह मर गया। घर बिगड़ गया। मैं नौकरी की तालश

में भटकता हुआ यहाँ आया हूँ। यदि मेरे निर्वाह का प्रबन्ध करदें तो बड़ी कृपा होगी।" रामसिंह स्वभाव का अच्छा था। लड़के के स्वरूप और विनती को देखकर उसने कहा—"अच्छा तू मेरे यहाँ रहा कर, मैं तेरी तनख़्वाह नियत कर दूंगा।" अंधा क्या चाहे दो आँखें। बालक की मुह-माँगी इच्छा पूरी हुई। इसने रामसिंह की नौकरी करली। वह सायं प्रातः बड़े प्रेम से भंग तैयार करके उसको पिलाता। रामसिंह बड़ा खुश हो गया। शनैः-शनैः उसके मन में इतना विश्वास हो गया कि वह रामसिंह के घर में भी आने लगा और इसकी स्त्री भी इससे अतीव प्रेम करने लगी। अब वह बन्दीगृह में कभी-कभी आवश्यकतानुसार आया जाया करता था। रामानन्द के साथ इशारों से बात चीत होने लगी और यद्यपि पहरे का प्रबन्ध बड़ी सावधानी से किया जाता था, परन्तु नानक ने रामानंद को निश्चय करा दिया कि वह चातुर्य्य वा सावधानी से फिर भी बन्दीगृह से उसको बाहर निकाल सकता है।

एक दिन रात का समय पाकर यह कारागार में आया। हथकड़ी काटकर बूढ़े को दीवार पर चढ़ाकर कारागार की दूसरी ओर निकाल दिया और धैर्य देकर जंगल में पहुँचा दिया। यहाँ सबों ने शरीर पर भस्म मलकर योगियों का वेश बना लिया। फिर यह पुरुष दूसरी ओर चल दिये। रामसिंह को सुबह जाकर ख़बर लगी। उनके पीछे सिपाही भेजे गये।

पीछा करने का प्रबन्ध पूर्ण किया गया परन्तु सब प्रयत्न व्यर्थ हो गया। न कहीं रामानन्द का पता लगा न नानक का। रामानन्द कैद की आपत्तियो से दुर्बल हो गया था। सत्यवती ने उसको एक जगह ठहरा दिया और आप अब किसी और विचार से दूसरी ओर निकली। जंगल में एक बड़ा शिवजी

का मंदिर था। उसमे एक बिधवा स्त्री अपनी इच्छानुसार पूजा करती देखने मे आई। सत्यवती ने उसके पाँव को चूमा और उसको अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया और सहायता की प्रार्थना की ईश्वर की कृपा से वह कोई सामान्य स्त्री नही थी। उसको समस्त अत्याचार क वृत्तान्त मालूम थे उसने सत्यवती से कहा—"तेरा पति परमानन्द जीता है, कलकत्ता में क़ैद है। तूने जैसे धैर्य और बल से रामानन्द को बचाया है, उसको भी छुड़ा लावेगी।"

यह वचन सुनकर सत्यवती के मुख पर शोक के चिन्ह प्रकाशित हुए। इसको देखकर उस योगिनी ने कहा—"पुत्री! तू चिता क्यो करती है? हम सब लोग संसार मे किसी आशा के लिए आये है। हमारी दशा काष्ठ की पुतली की भाँति है, जो खिलाड़ी के हाथ मे खेल रही है। जिस काम को तूने प्रारम्भ किया है, उसको पूरा करके छोड़ना। कलकत्ता की यात्रा कर, ईश्वर कोई न कोई प्रबंध बना देगा और तेरी आशा पूर्ण होगी। निर्धनता समझ बूझ वाले सच्चे पुरुष को सहायक होती है। जहाँ धन पदार्थ कार्य सिद्ध नही कर सकते, वहाँ निर्धनता सफलता को प्राप्त होती है। धनी इस प्रकार सोच नही सकते, जिस प्रकार दरिद्री पुरुष आपत्ति के समय कोई न कोई उपाय निकाल लेता है।"

ग़रीब सत्यवती अनाथ लड़के का वेश बनाकर माँगते खाते कलकत्ता की ओर चली। रात दिन बराबर यात्रा करती रही। लड़के की पोशाक होने से किसी ने उसकी दुर्दशा नही की। निदान वह कलकत्ता में आई और यहाँ रामकृष्ण नामी एक भद्र पुरुष था, उसके यहाँ जाकर नौकरी कर ली। परमानन्द का छूटना उस समय तक असम्भव था जब तक सुप्रीम

कोर्ट उसके हक में सिफ़ारिश या फ़ैसला न करे। कलकत्ता का कारागार और तरह का था। यहाँ किसी की दाल नही गल सकती थी। सत्यवती इसी सोच में रहने लगी। रामकृष्ण से अपनी आशा पूर्ण न होती देखकर उसने उसकी नौकरी छोड़ दी।

निदान एक समय गंगागोविंदसिंह नामी कम्पनी के उच्चाधिकारी की माता का श्राद्ध-दिन आया। सहस्रो ब्राह्मण उसके यहाँ भोजन पाने गये। उनमें एक दरिद्री ब्राह्मण के लड़के का भी न्योता था। वह कई दिन से उसके घर के सामने एक वृक्ष के नीचे बैठा रहता था। कई दिन से इ ने भोजन नही किया था। लोग पास आकर कई प्रकार के भोजन लाते, परन्तु वह किसी की ओर दृष्टि उठाकर भी नही देखता था। गंगागोविंदसिंह को ब्राह्मण-पुत्र के हठ की खबर दी गई। उसने भी खाने को भोजन भिजवा दिया। परन्तु लड़के ने उसकी ओर तनिक भी न देखा। अन्तिम श्राद्ध का दिन आया। हज़ारों ब्राह्मणों को दक्षिणा बँटने लगी। सब आशीर्वाद देते हुए अपने-अपने घर चले गये। यह कैसे हो सकता था कि माता के श्राद्ध का समय और एक ब्राह्मण का लड़का वृक्ष के नीचे कई दिन से भूखा पड़ा रहे। जब सब लोग खा पीकर चले गये, तो गंगागोविंदसिंह उसके पास आप आया और बोला—"हे ब्राह्मण-पुत्र! तू क्यों हठ करता है? तू खाना क्यों नहीं खाता? जो तेरी इच्छा है, मुझसे कहो। यदि मेरे वश में होगा, तो मैं अवश्य कर दूंगा। लड़के ने यह बाते सुनकर सिर ऊँचा किया। नेत्र डबडबाये हुए थे और उसने उससे कहा—"मेरा सम्बन्धी देवीसिंह के अन्याय के कारण कैद में है, उसकी रिहाई का उपाय बतादें।" जब गंगागोविंदसिंह ने रामानन्द

और उसके लड़के को क़ैद होने का वृत्तान्त सुना तो उसने उत्तर दिया कि—"मुझे सब कुछ विदित है। तू उठ, इस समय श्राद्ध का भोजन करले, मैं उसका प्रबंध कर दूंगा।"

सत्यवती ने खाना खाया, और कई दिन के अनन्तर उसे प्रयत्न वा सिफ़ारिश कराने का समय मिला और परमानन्द को रिहाई मिल गई।

वह गंगागोविंदसिंह के घर यह जानने को आया कि किस प्यारे संबंधी की सहायता से मुझे कैद से छुटकारा मिला है। उसको एक निर्धन मैला कुचैला गोरे रंग का लड़का बताया गया वह देखने में सुन्दर था परन्तु शरीर पर तमाम मिट्टी मली हुई थी। सत्यवती से अलग हुए उसे कई वर्ष बीत चुके थे वह उसको एकाएकी पहिचान न सका। परंतु चेहरे से परिचित मालूम होता था। उसने उपकार जतलाने के विचार से हाथ बाँधकर उसका धन्यवाद करना चाहा।

सत्यवती उसी समय पाँव पर गिर पड़ी—"प्राणनाथ! मैं आपकी अभागी दासी सत्यवती हूँ।" पति-पत्नी का मिलाप मन को कंपित कर देनेवाला था। उसका लिखना कठिन है। दोनों गले मिलकर खूब रोये। दोनो को एक दूसरे से मिले बारह वर्ष हो चुके थे जब से सत्यवती ने अपने पति का मुख नहीं देखा था। सत्यवती ने फिर कहा—"प्राणनाथ! आप दुःख में थे, मेरे पापी प्राण नही निकले मैं अब तक निर्लज्जता के जीवन को भोग रही थी, आप क्षमा करें।" परमानन्द ने उन बातों पर प्रेम के आँसू बहाये। देखनेवाले विस्मित हुए और कहने लगे—"यह किस तरह की स्त्री है। यह तो देवी है, जिसने अपने पति की सेवा में इतना कष्ट

सहा।" गंगागोविंदसिंह आदि ने उसका बहुत कुछ आदर सत्कार किया।

सत्यवती ने फिर पति से कहा--"प्राणनाथ! जल्दी कीजिए आपके माता पिता स्मरण कर रहे होंगे।"

पति को साथ लेकर सत्यवती रंगपुर के बन मे आई जहाँ इस श्रेष्ठ वा पुण्यात्मा योगिन के घर मे रामानंद रहता था। सब परस्पर मिलकर प्रसन्न हुए। सब ने एक वाणी से सत्यवती की प्रशंसा की और योगिन ने आशीर्वाद दिया। सत्यवती तू सच्ची देवी है। तेरा साहस धन्य है। तू सौभाग्यवती और पुत्रवती हो और परमात्मा तुम दोनों को सुख सम्पति देवे।

यहाँ तक हम को सत्यवती वा परमानन्द के हाल मिलते हैं। आगे का पता नही चलता और न उसके कहने की हमको आवश्यकता है। जिस प्रकार इन सब के दिन फिरे, ईश्वर करे हम सब लोगो के भी दिन फिरे।

जिस विधि हर दुख दूर कर, सबको दिया मिलाय।
इस बिधि भारत अनाथ के, दुर्दिन देव हटाय॥

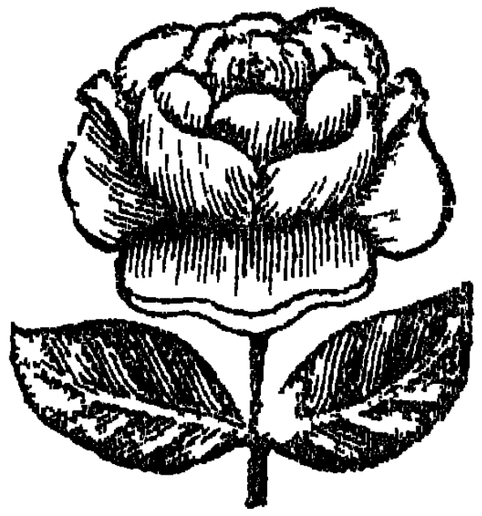

१०—चंद्रकान्ता

दोहा

पतिव्रता मैली भली, गले कांच की पोत।
सब सखियन में यों दिपे, जैसे शशि की जोत॥
पतिव्रता मैली भली, काली कुचल कुरूप।
पतिव्रता के रूप पर, वारूँ लाख स्वरूप॥

—कबीरदास जी।

सन् १७८० ई० मे राजा चेतसिह बनारस का अधिपति था। यह पुरुष श्रेष्ठ धर्मात्मा और विद्वानों का आदर करनेवाला था। इसकी सभा में बड़े-बड़े माननीय विद्वान् रहा करते थे। इस राजा के पण्डितों मे देवशर्मा नामी एक सकल शास्त्रवेत्ता विख्यात पण्डित था जो कर्मकाण्ड मे सबसे उत्तम समझा जाता था। उसकी स्त्री का नाम सावित्री था। सावित्री से नन्दकिशोर नामक पुत्र और चन्द्रकान्ता नाम्नी पुत्री उत्पन्न हुई थी। चन्द्रकान्ता अपने श्रेष्ठ आचार से माता पिता और सहवासियों की दृष्टि में सबको प्रिय थी। वह केवल सुन्दरी ही नही थी किन्तु उसमें उत्तम मनुष्यत्व के गुण भी थे। जहाँ वह संस्कृत में विदुषी समझी जाती थी वहाँ इसके साथ ही वह वैद्यक-शास्त्र में भी सब से अधिक निपुण थी और वह सम्पूर्ण धातु, रसादि आप बनाया करती थी। जब चन्द्रकान्ता बड़ी हो गई, माता पिता ने काशी के एक प्रसिद्ध पण्डित

श्रीकृष्ण शास्त्री के लड़के बालशास्त्री के साथ उसका विवाह कर दिया था। कृष्णशास्त्री को चेतसिंह ने बहुत कुछ जागीरें दे रक्खी थी। बालशास्त्री का शास्त्र में बड़ा अभ्यास था। राजा उसकी विद्वत्ता देखकर बहुत प्रसन्न रहता था। चन्द्र-कान्ता अपने पति के घर आकर सास-ससुर, नन्द-जेठानी सब की सेवा करती और इसकी सेवा से सब प्रसन्न थे और सास वा नन्दो की अनुचित शिकायत इसके घर में कभी नही सुनी गई थी जो रुपया उसको पति से मिलता वह ग़रीबों को दान कर देती थी और अपने घर मे उसने एक औषधालय बना रक्खा था। प्रातःकाल पूजा करने के अनन्तर राज-दासियाँ, स्त्रियां और बालक आकर बिना मोल औषधि ल जाते थे। चैत्र, क्वार के नवरात्रों में नव दिन निरन्तर हिन्दू स्त्रियो को अपने यहाँ बुलाकर कथा सुनाया करती और धर्म कर्म की बातें बतलाती रहती थी। इस प्रकार का स्वभाव सब पुरुषो के परम प्रिय बनाने योग्य है। सब इसको देवी कहते थे। बालशास्त्री अपनी स्त्री की निपुणता और विद्वत्ता से बहुत प्रसन्न थे और जब कभी इसकी चर्चा होती, तो वह अपने भाग्य की स्तुति करते थे।

परन्तु संसार में केवल सर्वदा सुख ही नही होता। बाग़ में जहाँ गुलाब हैं वहाँ साथ ही काँटा भी है। आम के साथ बबूल भी रहता है। शहद अच्छी वस्तु है, परन्तु वहाँ मधु-मक्खियो के दंश का भी भय है। १७८० में समस्त काशी पर एकाएक आपत्ति आ गई। यह सब जानते थे कि चेतसिंह के पास बहुत धन है। वारेन हेस्टिंग्ज़ साहब गवर्नर जनरल के मुख में पानी भर आया। उन्होंने बहाना पाकर साढ़े बाईस लाख रुपयों के साथ पाँच लाख रुपया और

माँगा। बेचारे राजा ने रुपया भेज दिया। साहब का लालच बढ़ गया। अब की बार उन्होंने पच्चीस लाख रुपया माँगा और इसके पाने के लिये आप बनारस आ पहुँचे। ग़रीब चेतसिंह के पास इतना धन नहीं था। होस्टिंग्ज़ ने उसको बुला भेजा और कहा—"कि तुम शत्रुओं के साथ पत्र व्यवहार रखते हो।" इस दोष से उसको गद्दी से उतार दिया और चालीस लाख रुपया की बात चीत करके उसके भानजे को दीवानी वा फौजदारी का अधिकार दे दिया। चेतसिंह की कुछ न पूछो वह कैद मे रहा। फिर किसी तरह निकल कर चुनार-गढ़ में आया और वहाँ से भागकर उसने महाराज सिंधिया की शरण ली। उसकी सन्तति अब तक आगरा में पेंशन पाती है और काशी के छत्ते में रहती है। एक पुरुष गंगा-गोविन्दसिंह इसका नौकर था, इसने समय पाकर अपना मेल बहुत कुछ बढ़ा लिया था, और राज-कर उगाहने के लिये बहुतों को कैद कर देता था और लार्ड होस्टिंग्ज़ का कृपा पात्र हो गया था।

उसका लालच पूरा करने के लिये बनारस के जागीरदार वा तालुकेदारों ने अपनी स्त्रियों के गहने तक बेच डाले। परन्तु इस निर्दयी की तृष्णा न मिटी। और अन्य लोगों के सिवा इसने बालशास्त्री को भी कलकत्ता में कैद करवाया था और धन पदार्थ भी इन के हाथ से नहीं बच सका था और इनके घर वाले रोटी से भी लाचार थे। आपत्ति के समय सदा ऐसा ही हुआ करता है।

जिस दिन से पति कैद हुआ, चन्द्रकांता बड़ी दुःखी रहती थी। दिन में एक बार रूखी सूखी रोटी खा लेती थी और रात को सिला पर सोती। सास ससुर उसको सदैव

ढाढ़स दिया करते थे, परन्तु बातों से क्या ढाढ़स हो सकती थी ? वह रात दिन इसी चिन्ता मे रहती थी कि पति का कैसे छुटकारा हो। निदान एक दिन रात के समय वह रोती हुई ईश्वर के चरणो में प्रार्थना करने लगी। इस दशा में प्रातःकाल हो गया और उसने उठकर सास ससुर के पॉव छूकर प्रार्थना की कि "मुझे कलकत्ता जाने की आज्ञा दीजिऐ। मैं आप अपने पति के छुड़ाने का विचार करूँगी।" उन्होने उत्तर दिया—"तू सुकुमार स्त्री क्या कर सकेगी ? गंगागोविन्दसिह की प्रभुता को कौन हटा सकता है और फिर मार्ग मे और कलकत्ता शहर मे तेरे लिये भय है।" चन्द्रकांता ने कहा—"यह सब सच है। परन्तु संसार में एक और भी है जो सबसे उत्तम है। मैं उसी की आश्रयशक्ति पर घर से निकलूंगी वह मेरा बेड़ा पार कर देगा। बाकी रहा मार्ग का भय, सो धर्मात्मा स्त्री की अप्रतिष्ठा करने की किसी पुरुष मे सामर्थ्य नही है मैं इसके विषय में चिन्ता नहीं करती हूँ, परमात्मा मेरी सहायता करेगा और अब मैं उसकी सहायता व कृपा का पूरा-पूरा विश्वास करके घर से बाहर निकलूंगी। और जब तक मैं पति को न छुड़ा लाऊँगी मुझको घर में रहना पाप है।" चन्द्रकांता ने उस समय बहुत सी धर्म की बातें सुनाईं जिनको विस्तार भय से यहाँ नही लिखते। फल यह हुआ कि सास वा ससुर ने रोते हुए अपनी बधू को जाने की आज्ञा दी और इसने दोनों को नमस्कार करके—

सुध बुध सभी बिसार के, न शुभ घड़ी विचारि।
घर अपना झट त्याग कर, झट बन को सिधारि॥

पैदल, न कोई संगी न साथी, एक युवती सुन्दरी का घर से निकलना, सोचने के योग्य है। घर से निकल राम-नगर से होती हुई वह एक ग्राम में पहुँची। एक पुरुष सामने से आ रहा था। उसने पूछा—"भाई, कलकत्ते का रास्ता यदि जानते हो तो बतादो।" उसने कहा—"संसार खुला पड़ा है जिधर लोग समायें उधर चली जा।" परम दुखिया उस बात से लज्जित हुई और ईश्वर के सहारे अकेली पूर्व को ओर चली। परमात्मा दृढ़ प्रतिज्ञा वाले पुरुष की सहायता करता है। यह बे खटके बाट काटती हुई चली जा रही थी। एक दिन रास्ते में आँधी आई। चारो ओर घनघोर घटायें छा गईं। बिजुली चमकने लगी। मेघ गरजने लगे। मूसला-धार जल बरसना प्रारम्भ हुआ। यह बेचारी चन्द्रकान्ता थर-थर काँपती हुई एक वृक्ष के नीचे बैठ गई। वस्त्र पानी से भीग गये। वायु के चलने से शीत अति पड़ रही थी। ईश्वर! तेरी लीला अपरम्पार है। यह आपत्तियें वास्तव में मेरी परीक्षा के लिये आ रही हैं। शीघ्र ही आकाश निर्मल हो गया। सूर्य निकल आया। उसने देखा कि सामने से एक शेर आ रहा है परन्तु इसका इसको भय नही था। प्राणों से प्रिय क्या वस्तु है, परन्तु वह प्राणपति के साथ थे। यदि शेर ने मार दिया तो क्या हानि है। शेर के पीछे-पीछे उसका शिकारी भी आ रहा था। उसने शेर को गोली का निशाना बनाया। शेर पृथ्वी पर गिर पड़ा। शिकारी एक वृक्ष के नीचे एक सुन्दरी स्त्री को देखकर उसकी ओर चला। स्त्री को शेर का भय नही था परन्तु इस पुरुष की ओर से इसके हृदय में भय उत्पन्न हुआ। वह उसके स्वरूप को देखकर कहने लगा—"सुन्दरी, तू इस वन में क्या कर रही है? मुझे

तू अपना दास समझ और मेरे घर पर चल कर बस।"

चन्द्रकांता ने कहा—"भाई, तू ने शेर के पंजे से मेरे प्राण बचाये है, मै तेरी कृतज्ञ हूँ। प्राण-रक्षक पिता के तुल्य होता है। तू बुरी दृष्टि से मेरे को मत देख, नही तो जिस ईश्वर ने तेरे हाथ से शेर को मरवाया है उसमें तेरी ख़बर लेने की भी सामर्थ्य है। मैं पतिव्रता स्त्री हूँ। ईश्वर की सहायता से घर से निकली हूँ।" शिकारी तो किसी और ही विचार में मग्न था, उसकी बात की ओर उसने ध्यान नही दिया और चाहा कि उसे हाथ से पकड़कर घर ले जावे, परन्तु उसी समय बिजली चमकी उसकी कड़क के शब्द से पृथ्वी वा आकाश गूंज उठे। चन्द्रकाँता ने आँख उठाई। शिकारी उसके पाँव के नीचे बेसुध पड़ा था।

चन्द्रकांता उसी समय इस घटना को देखकर पृथ्वी पर गिर पड़ी और उसके मुख से निकला—"प्रभो! असहायो के सहायक! दरिद्रो के माता पिता तुम्ही हो। तुम्हारी महिमा कौन वर्णन कर सकता है।" फिर यह उठ खड़ी हुई और पूर्व की ओर चल निकली। मार्ग मे एक रामपुर ग्राम आया। उसके पास एक शिवालय देखा। यहाँ बहुत से स्त्री पुरुष पूजा करने के लिये खड़े थे। मन्दिर से मिली हुई धर्मशाला भी थी, यहाँ यात्री आकर ठहरा करते थे। चन्द्रकांता उस में ठहर गई। उस ग्राम का राजा व्यभिचारी था। उसके पास कई ऐसी व्यभिचारिणी स्त्रियें थी जो मन्दिर में केवल परदेशी स्त्रियो को खराब करने का इच्छा से ही आया जाया करती थीं।

चन्द्रकांता रूपवती थी। उनकी दृष्टि उस पर पड़ी—"यह तो कोई बड़ी सुन्दर स्त्री है। राजा इसको देखकर प्रसन्न

हो जावेगा।" यह सोचकर एक स्त्री उस दीन चन्द्रकांता के पास आकर कहने लगी "बेटी, तू इकल्ली यहाँ कहाँ रहेगी। पास ही मेरा घर है नहाँ चल और आराम से रात्रि व्यतीत कर। प्रातः जिधर जाना है चली जाना।" चन्द्रकान्ता मन में प्रसन्न हुई। साथ-साथ चल खड़ी हुई। थोड़ी दूर पर एक बाग था। उसके बीच में एक बड़ी कोठी बनी थी। स्त्री ने चन्द्रकांता को लाकर उसमें ठहराया और उसके खाने पीने का प्रबन्ध करके वह चली गई, और ऊपर के कमरे में उसके सोने के लिये पलंग बिछा दिया। अभी उसने कठिनता से सोने की तैयारी ही की थी कि आहट पाकर वह स्त्री किसी कमरे में जा छुपी ओर ग्राम का राजा उसमे प्रविष्ट हुआ। चन्द्रकान्ता की अब आँख खुली। उसने सोचा यह स्त्री खराब है और इसी प्रकार स्त्रियों को बिगाड़ती है। वह इसी चिंता में थी कि राजा उसके पास आकर कहने लगा—"रूपवती सुन्दरी! तू सचमुच पटरानी होने के योग्य है। यह बहु मूल्य हार मैं तेरे गले में डाले देता हूँ। आज से तू इस घर को सदा के लिये अपना समझ और मै तेरी प्रसन्नता वा आराम का ध्यान रक्खूंगा।" चन्द्रकान्ता को अब ईश्वर मे अधिक विश्वास हो गया था, उसने हाथ से हार को झटक कर कहा—"राजन् खबरदार! मुझ से इस प्रकार की बात न करो। मैं सीता, द्रौपदी और दमयन्ती जैसी स्त्री हूँ। मुझको अबला समझकर मत भूलना। मेरा सहायक परमेश्वर है। जिसने रावण का नाश किया, द्रौपदी की लाज रक्खी और जिसने दमयन्ती के सत को बचाया, वह अब तक जीवित है और चन्द्रकान्ता की भी रक्षा करेगा।"

चन्द्रकान्ता के बचनों में बड़ा प्रभाव था। राजा काँप उठा,

परन्तु इसने सोचा कि कुछ दिन यहाँ रहने के अनन्तर इसका स्वाभाव ठीक हो जावेगा और उसने उससे कहा—"अच्छा अभी यात्रा के क्लेश से तेरी सुध बुध ठिकाने नही है फिर मैं आकर मिलूंगा।" वह बोली—"तू पापी है, इस प्रकार निरपराध स्त्रियो को कोई नही सताता। मुझको यहाँ से जाने दे नहीं तो तेरा कल्याण नहीं है। मुझे अपना जीना भी भारी है।"

राजा तो चुपचाप चला गया। अब वह स्त्री आई जो मन्दिर से चन्द्रकान्ता को लाई थी। उसको देखकर सती के नेत्र क्रोध से लाल हो गये। उसने कहा—"दुष्टा पापिनी! यह क्या ढंग है।"

वह दुष्टा स्त्री वार्तालाप उचित न समझ कर वहाँ से उलटे पाँव चली आई और पौड़ी का दरवाज़ा बंद कर दिया। चंद्रकांता ने समझा कि मैं कैद करदी गई हूँ, अतः थोड़ी देर के लिये फिर भूमि पर माथा टेककर पूरे दो घंटे तक वह ईश्वर से प्रार्थना करती रही। इतने में सब लोग सो रहे। आकाश मेघों से निर्मल हो गया। चाँदनी खिली हुई थी उसने देखा तो एक वृक्ष की शाखा खिड़की से मिली हुई नज़र आई। जान में जान हुई और वही उसने धोती कसकर उस शाखा का सहारा लिया, और झट थोड़ी देर में भूमि पर आ गई। बाग़ की दीवारें ऊँची थी परन्तु निराश्रता ने उसको बड़ा बल दिया था। वह उछल कर चढ़ गई और दो चार मिनट में दूसरी ओर आ पहुँची और वहाँ से निर्भय भाग निकली। थोड़ी देर के अनन्तर एक नदी मार्ग में आई। अब क्या किया जावे, परन्तु इसने कहा कि मैं अभी मरनेवाली नहीं हूँ, ईश्वर मेरे साथ है, कुछ शोक नहीं, नदी मुझे रोक न सकेगी और

वह राम का नाम लेकर नदी में उतर पड़ी। कुछ-कुछ तैरना भी जानती थी थोड़ी देर में तट पर जा पहुँची और ईश्वर का धन्यवाद करने लगी।

वह रात भर चलती रही, भय था कि कहीं दुष्ट राजा इसका पीछा न करता हो। जब अरुणोदय हो गया। शीतल वायु चलने लगी। परिश्रांता चन्द्रकान्ता भूमि पर लेट गई। थक जाने से नींद आगई और वह उस समय जागी जब दो घंटा दिन चढ़ आया। चारो ओर वन ही वन दिखाई दिया। इसने सोचा, मेरा स्वरूप मेरे मार्ग में विघ्नकारी है। भेष बदलने के सिवाय काम नही निकलेगा और उसी समय उसने सारे शरीर पर धूल मल ली और योगिनी का भेष बनाये हुए वह कलकत्ता पहुँच गई।

वहाँ एक देवस्थान में उसने डेरा जमा लिया। संस्कृत में विदुषी थी, वैद्यक शास्त्र भी बहुत अच्छी जानती थी। दो चार घण्टों में सारे शहर में धूम मच गई कि एक विदुषी योगिनी आई हुई है। नर नारियों की भीड़ उसके पास होने लगी और सब उसका उपदेश सुनकर विस्मित होते थे। वह चिरकाल तक वहाँ रही। सहस्रों पुरुष और स्त्रियो का इलाज उसके हाथ से हुआ और सब को आराम हो जाता था क्योंकि इसके पास अनेक प्रकार के लोग आने लगे थे। इसने बात ही बात में बालशास्त्री का हाल मालूम कर लिया था। लोगो ने कहा—"वह अच्छा है, परन्तु क़ैद में है। दैव योग से लार्ड होस्टिंग्ज़ के दरबारियो में से किसी प्रतिष्ठित पुरुष की स्त्री बीमार हो गई। हक़ीम, वैद्य और डाक्टरो ने जवाब दे दिया। लोगों ने सम्मति दी कि योगिन की दवाई की परीक्षा करनी चाहिये। वह अपनी स्त्री को लेकर योगिन के निकट आया।

चन्द्रकांता ने उस दिन उसे अपने पास रक्खा। तीसरे दिन उसकी व्याधि घटनी आरम्भ हुई और एक सप्ताह के अनन्तर वह नितान्त अच्छी हो गई। दरबारी बहुत प्रसन्न हुआ और स्त्री बहुत कृतज्ञ हुई। दोनों ने हाथ बाँधकर कहा—'देवी! कुछ हमारी सेवा स्वीकार करो।"

चन्द्रकांता निष्प्रयोजन चिकित्सा करती थी, किसी से कुछ लेती नही थी। उनको देखकर उसके नेत्रो से अश्रुधारा प्रवाहित हुई। दोनो ने पूछा—"आपके ऐसे शोकातुर होने का क्या कारण है।" तब सती ने उनसे अपने पति की कैद का वृत्तान्त सुनाया। दरबारी ने क्रोध से कहा कि—"गंगागोविंद-सिंह बड़ा अन्यायी है। उसने कितने भले पुरुषों के घर उजाड़ दिये है। कोई चिन्ता नही, मैं शीघ्र ही इसका प्रबन्ध करूँगा।" दरबारी का होस्टिंग्ज़ की सभा में बड़ा मान था। इसने परिश्रम करके बालशास्त्री की रिहाई की आज्ञा दिला दी और उसने कारागार में जाकर बालशास्त्री का छुड़ाया। परन्तु उसको यह नहीं बतलाया कि उसको छुड़ाने वाली एक मात्र उनकी स्त्री है, वरन् उससे कहा कि एक योगिन ने यत्न करके तुझको छुड़ा दिया। बालशास्त्री ने जा कि बड़ा धार्मिक पुरुष था, उसने विचारा कि ऐसी देवी के दर्शन करना और उसके पास जाकर उसकी कृतज्ञता का धन्यवाद करना परम आवश्यक है। योगिन ने उसको देखा। नेत्रो से अश्रुपात होने लगे। विस्मित बालशास्त्री सोचने लगा, यह कौन स्त्री है। आकृति तो चन्द्रकान्ता से मिलती है, परन्तु वह यहाँ कहाँ आ सकती है। संभव है कि उसी रूप की कोई और स्त्री हो, परन्तु इसके मन में एक प्रकार का आकर्षण उत्पन्न हुआ। निदान उसने डबडबाने नेत्रो से पूछा—यह योगिन कौन है।" वेश बदले

हुए चन्द्रकान्ता ने उसके पाँव की ओर झुककर कहा—"प्राण-नाथ ! यह आपकी दासी चन्द्रकान्ता है।' दोनों नेत्रो से आँसू गिरने लगे। बहुत से लोग पास खड़े थे। एकाँत में जाकर स्त्री पुरुष गले मिले और स्त्री ने आपत्ति की कथा सुनाई। लार्ड होस्टिंग्ज़ का दरबारी दोनो के पाँव पर गिर पड़ा और कहने लगा—"प्रेम और सच्चाई का ऐसा जोड़ा संसार मे कहाँ देखने मे आता है ? ऐसे प्राणियो के दर्शन मात्र से पाप कट जाते है। तुम्हारा परस्पर प्रेम धन्य है, और धन्य है भारतवर्ष जहाँ ऐसे श्रेष्ठ पुण्यात्मा जीव उत्पन्न होते है।"

यह कह कर वह उनको अपने घर ले गया। कुछ दिन अपने घर रखकर फिर सवारी का प्रबंध करवाया। उस समय रेल जारी नही हुई थी, एक मास के अनंतर बालशास्त्री और चन्द्रकान्ता दोनों अपने घर पहुँचे। अपने माता पिता से मिलकर वे बहुत प्रसन्न हुए। ईश्वर का धन्यवाद किया और जब चन्द्रकान्ता ने मार्ग की आपत्तियो को सुनाया, उन सब ने मिलकर ईश्वर का धन्यवाद कर अश्रुपात किये। काशी धाम के गली कूचा में चन्द्रकान्ता के पतिव्रत धर्म की प्रशंसा होने लगी। अब कृष्णशास्त्री की सुन्दरी बधू को कोई बधू नही कहता था वरन् वह सती माता कहलाती थी। स्त्री पुरुष दोनों हर्ष से समय व्यतीत करने लगे।

कई बरसो के अनन्तर उनके घर मणिसुन्दर नामी लड़का उत्पन्न हुआ जो अपने माता पिता के अनुसार चलने वाला निकला। प्यारे पाठको ! ईश्वर करे कि भारतवर्ष में ऐसी स्त्रियें उत्पन्न हो जो हमारे तुम्हारे घरों को भी स्वर्गधाम बनादें और भारतवर्ष भी उनके प्रताप से फिर उच्च शिखर पर पहुँचे जावे।

११—विजया

वेधो तीर अमोघ से, नाहिं चिंता मोहे धीर।
चिंता हो तो इस बात की, तव कारण हो पीर॥

अयोध्यापुरी में शूरसेन नामक एक धनी रहता था। उसके बाप दादा राजा के दरबारी थे। घर में ईश्वर का दिया हुआ सब कुछ था। कई ग्रामो की ज़िमीदारी भी थी। द्वार पर हाथी झूमते थे और अनेक पुरुषो का पालन उसके हाथ से होता था।

विजया उस पुरुष की स्त्री बहुत सुन्दर और सदाचारिणी थी उसका अन्तःकरण शुद्ध था। वह दिन के बहुत से भाग में केवल पूजा-पाठ करती रहती थी। प्रातःकाल स्नानादि के अनन्तर वह अपने लड़के लड़कियो के साथ मन्दिर में जाकर कथा सुनती। वह आप धर्म-शास्त्र जानती थी, रात को रामायण वा महाभारत की कथा अपने बच्चों को सुनाती और उन को धर्म पर दृढ़ विश्वास रखने का उपदेश करती थी। घर के काम काज का कोई ऐसा भाग न था जिसको वह आप न करती। सहवासी लोग भी उसकी सुन्दरता और आचार पर प्रसन्न थे। वह सब के दुःख में काम आया करती और जब किसी पर आपद् पड़ती तो विजया की दयालुता उनकी कठिनताओ को सुगम कर देती थी। शूरसेन उस स्त्री के श्रेष्ठ गुणो को देखकर प्रसन्न रहता था। उसको लोग सामान्यतः लक्ष्मी कहते थे और सब लोग आदर सत्कार करते थे। परन्तु हा खेद! इसके जीवन में एक ऐसी भयानक बात आई कि जिससे इसका आगामी समस्त जीवन शोक से व्यतीत हुआ।

शूरसेन दुर्भाग्य से दुष्ट पुरुषों की संगति करने लगा। विजया के आचार व्यवहार ने उस पर ऐसा प्रभाव डाल रक्खा था कि दोनो समय रीत्यानुसार वह हवन संध्या करता और मन्दिर में जाकर अपने नियमानुसार ईश्वर की उपासना करता था, परन्तु दुष्टो की संगति ने उसके मन को कुछ का कुछ कर दिया। उसका पहला स्वभाव जाता रहा और शनैः-शनैः यहाँ तक उसकी आदत बिगड़ गई कि उसने नित्य नियम करना छोड़ दिया। विजया डर गई कि ऐसा न हो कि यह बिगाड़ कोई उपद्रव करे। जब वह पति को संध्यादि के लिये कहे तो वह बीमारी का बहाना करता। विजया चुप हो जाती, बेचारी क्या करती क्या अधिकार था। जहाँ समझाने बुझाने से काम नहीं चलता वहाँ प्रायः पुरुष को मौन ही रहना पड़ता है। कुसंग ने शूरसेन को किसी काम का न छोड़ा था। यह ऐसी बुरी बला है जो पुरुष को भ्रष्ट किये बिना नही छोड़ती।

बुरे की संगत है बुरी, करे जो सत्यानाश।
बड़े-बड़े सुज्ञ सुजान भी, मुलथुल हुए विनाश॥

बुरे दिन आये, हाथी, घोड़े धन पदार्थ सब बिक बिका गया। समस्त ग्राम एक-एक करके हाथ से जाते रहे। शूरसेन कंगाल हो गया। जिस वंश के आश्रय से सैकड़ो लोग पलते थे उसकी यह दशा हो गई कि भोजनाच्छादन भी न मिलने लगा। विजया ने पति को बहुत कुछ समझाया परन्तु वह तो किसी और धुन में था, उस पर कोई और ही भूत सवार था, वह कब किसी की सुनने लगा। दुखिया अपने

भूषण आदि सामग्री बेचकर कुटुम्ब की पालना करने लगी। परन्तु यह दशा कब तक रह सकता थी, वह मन ही मन में पश्चात्ताप करती रहती थी।

पहिले तो शूरसेन उसका बहुत आदर सत्कार किया करता था, परन्तु व्यसनी होने से उसमें प्रतिदिन निर्लज्जता और क्रूरता आती गई। विजया ने देखा कि समझाने बुझाने से इसकी दशा और भी बिगड़ जावेगी, लाचार चुप हो रही, परन्तु पति की सेवा वैसे ही करती रही और उसकी आज्ञा मानने मे उसने तनिक भी फ़रक नहीं आने दिया।

कुछ दिनो के अनन्तर शूरसेन की यह दशा हो गई कि लोग उसको उन्मत्त शराबी देखकर गली से उठा लाते। जब वह मद्य के तरङ्ग मे होता व्यर्थ बकवाद करता, कभी कभी विजया को गालियाँ भी सुना देता, परन्तु वह चुप चाप से उनको सहार लेती। हाँ अपने बच्चो को उसकी दृष्टि से छुपा रखती थी जिससे कही पिता की दुर्व्यसनता का प्रभाव उन पर न पड़े। शूरसेन अपने आपे में नही रहता था। वह रीछ की तरह नाचने लगता। ग़रीब स्त्री को दुर्वचन सुनाता, परन्तु जब तक वह थककर चारपाई पर न लेट जाता था वह बेचारी चैन नही लेती थी, प्रीति से उसका मुख देखती रहती थी। जब वह नीद में चूर हो जाता, विजया एकान्त में जाकर रोने लगती और ईश्वर से उसके सीधे रास्ते पर आने को वर माँगती।

यद्यपि घर की समस्त सामग्री धन पदार्थ नष्ट हो चुका था। परन्तु उस सौभाग्यवती स्त्री ने अपने उच्च वंश की प्रतिष्ठा को वैसे ही बराबर स्थापित रक्खा। उसके लड़के

प्रातः उठकर वैसे ही माता के साथ मन्दिर को जाते और मान से जीवन को व्यतीत करने थे। विजया अपनी आवश्यकता को किसी पर प्रकट करना या किसी से सहायता माँगना अनुचित समझती थी। सन्तोष और सहिष्णुता यह सत्स्वा-भाव वालों के असली गुण है। वह घबराती नही थी और जब कभी लड़के पिता के विरुद्ध बात करते, उनको रोकती थी और कहा करती थी—"पुरुष की प्रकृति के भाग प्रायः इस प्रकार उभर खड़े होते हैं, जब इनका वेग घट जावेगा और जब वह दुर्बल हो जावेंगे, मेरा पति फिर प्रकृति पर आ जावेगा।"

एक बार बड़े पुत्र ने क्रुद्ध होकर कहा—"पिता ने हमारी परम्परा की जायदाद सत्यानाश कर दी, हम को कंगाल बना दिया, हम भिखारी हो गये। उनको हमारा तनिक भी ध्यान नही है कि हमारी क्या दशा होगी? क्या हम अब द्वार-द्वार भीख मांगते फिरें?"

विजया ने बेटे को डाँटकर कहा—"वह पुत्र क्या जो पिता की निन्दा करे। संसार मे प्रायः ऐसा होता रहता है। रुपया पैसा हाथ का मैल है। लोग कभी धनी और कभी निर्धन होते रहते है, इसकी क्या चिन्ता है। खेद इस बात का है जिस अयोध्या में रामचन्द्र जैसे योग्य लड़के हो चुके हैं वहाँ आज एक लड़का अपने पिता की निन्दा करता है। तुझे विदित नही कि दशरथ ने राम को भिखारी का लिबास पहना कर बन की ओर भेज दिया था, उस आज्ञाकारी पुत्र ने चूं तक नहीं किया। एक तू है जो पिता का अवगुण प्रकट करता है।"

पुत्र लज्जित हो गया। उस दिन से फिर उस घर में किसी ने शूरसेन के विषय में अपशब्द जिह्वा पर आने नहीं दिया।

शूरसेन का स्वभाव था कि जब वह मद्य में मग्न होता तो अपनी श्रेष्ठ स्त्री की प्रशंसा किया करता—"मेरी स्त्री साक्षात् देवी है, वह ईश्वर के भजन और ध्यान में मग्न रहती है, वह किसी को बुरा भला नहीं कहती।" उनके मित्रों ने कहा—"हम लोगो को भी तो ऐसी देवी के दर्शन कराओ।" शूरसेन ने मान लिया।

एक दिन शूरसेन के मित्रो का समूह उसके घर पर आ खड़ा हुआ। विजया को चिन्ता हुई, उसने मन में कहा कि इनका आगमन कल्याणकारी नही है, ईश्वर रक्षा करे। शूरसेन ने आते ही उससे कहा—"आज मेरे मित्र आये है, मैंने उनको निमंत्रण दिया है। तू शीघ्र खाने पीने का समान बना।" विजया न कहा—'सत्य वचन' और दीन उस समय चिन्ता करने लगी। घर मे कुछ सामान नही था, परन्तु पति की आज्ञा स्वीकार थी। आज तक बेचारी न किसी से कुछ माँगा नही था, भूषण एक-एक कर उतर गये थे, केवल नाक की एक नथ शेष रह गई थी। उसने किसी स्त्री के हाथ उस को गिरवी रखकर सामान मँगाने के लिये भेजा। इतने में कुछ देर हो गई। शूरसेन ने दूसरी बार स्मरण करवाया। बेचारी शीघ्र-शीघ्र प्रबन्ध करने लगी। घर की दासी टहलनी सब अलग हो चुकी थी, सारा काम काज उसको आप करना पड़ता था। वह रसोई में पूरी बना रही थी। शूरसेन तीसरी बार फिर आया। देरी के कारण उसको अति क्रोध आ गया था। उसने पूछा—"खाना तैयार हो गया?" विजया ने कहा—"पूरी तैय्यार हो गई हैं, साग अभी छवँके देती हूँ।" शूरसेन बहुत झंझलाया। मद्य के कारण उसने स्त्री को एक लात खैंचकर मार दी। गरीब विजया के सिर से रुधिर प्रवाह

होने लगा। शूरसेन चूंकि मद्य में था, मारते समय वह सँभल न सका और भूमि पर गिरपड़ा। विजया को बड़ी चोट लगी परंतु उसने अपनी चोट की ओर ध्यान नही किया, पति को भूमि पर गिरे हुए देखकर उसकी ओर दौड़ी कि कहीं उसको क्लेश तो नही हुआ? और दिलासा देकर हाथ से उठाने लगी। शूरसेन की दृष्टि स्त्री के सिर की ओर गई, जिसमें से रुधिर वेग से बह रहा था, उसका मद उसी समय उतर गया। उसने समझा मुझसे बड़ी भूल हो गई है, मैंने मद्य की दशा में अपनी निरदोष पत्नी को बड़ा दु ख पहुँचाया है। वह उसी समय धाड़ मारकर रोने लगा और अपने किये पर पछताने लगा। उसने स्त्री के सिर को पकड़ कर पट्टी बाँधनी चाही, साथ ही अपनी दशा पर पश्चात्ताप किया और अपने आप को बुरा भला कहता जाता था। विजया को अपनी चोट का इतना ख़्याल नही था जितना अपने पति के आराम का था। उसने कहा—"मैं अच्छी हूँ, आप कुछ चिता न करें। मेरी सिर-पीड़ा शीघ्र ही दूर हो जावेगी। कही आप को तो चोट नहीं लगी?" इन वचनों ने और भी शूरसेन के हृदय को चोट लगाई। उसने हाथ जोड़ कर विजया से कहा—"सुन्दरी! क्षमा कर। मैंने बड़ा अपराध किया है। मैंने अपनी मूर्खता से सब कुछ नाश कर दिया। आज मैंने सबसे अधम काम किया है। अब मैं कभी ऐसा न करूँगा।" यह कहकर वह अपनी स्त्री के पाँव पर गिरने लगा।

विजया ने कहा—"यह क्या बात है? तुम मेरे देवता हो। मेरा धर्म यह है कि मैं तुम्हारे पाँव पड़ूँ। तुम मुझको काँटो में न घसीटो। कोई बात नही है, मैं तो तुम्हारी दासी हूँ। तुमको

अख़्त्यार है, मुझे मारो चाहे प्यार करो। मैं कभी तुम्हारी निंदा नही करती।"

शूरसेन बड़ा लज्जित हुआ। उसने शपथ की कि आज से मैं अब कभी अफ़ीम आदि सेवन न करूँगा और जब उसने अपनी स्त्री के सिर पर पट्टी बाँध ली, तब बाहर आकर उसने अपने मित्रो से क्षमा माँगी और आगे दुष्ट करमो से हट जाने की प्रतिज्ञा की।

दूसरा दिन आया। विजया बीमार होकर खाट पर पड़ी थी। ज्वर बहुत वेग का चढ़ा था। वह बेसुध पड़ी थी। वह ज्वर के वेग में प्रलाप कर रही थी। शूरसेन खाट के पास बैठा हुआ उसको औषधि देने मे तत्पर था। विजया कभी बेटे से कहती—"मदन, देखो पिता की निन्दा न करो। वह तुम्हारा देवता है। पिता का नाम धरना पुत्रो के लिये अच्छा नही।" कभी वह बेटी से कहती—"चम्पा! देख, तेरा पिता आता होगा, जल्दी भोजन की चिन्ता कर, ऐसा न हो वह दुखी हों।"

निदान वह ज्वर में भी इस प्रकार पति की प्रीति और सेवा का ही विचार किया करती। शूरसेन के मन पर कैसे शोक का पर्वत गिर पड़ा। उसने दुराचारिता से कैसी सच्ची शुभचिन्तक स्त्री को चोट लगाई, वह मन ही मन में शोक करता रहा।

निदान कई दिन के अनन्तर विजया का ज्वर उतरा। पति को सिर के निकट बैठा देखकर उसका हृदय प्रसन्न हो गया। उसने कहा—"प्राणपति! मेरी बीमारी ने तुमको बहुत दु:ख दिया। तुम बाहर जाओ बाहर जाकर अपना चित्त बहलाओ, चम्पा व मदन बारी-बारी मेरे पास आते रहेंगे।

परन्तु शूरसेन ने इसका कहना न माना। वह अपने नीचपन की दशा और विजया की श्रेष्ठता का विचार करके प्रायः रोता रहता और सच्चे मन से उस भाग्यवती की आरोग्यता के लिये वर माँगा करता।

एक दो सप्ताह व्यतीत हुए। दरिद्रता से परे कोई दुःख नही। घर मे अन्न का नाम नही था। परन्तु जब पड़ोसी स्त्रियो को विजया की बीमारी का सूचना मिली, तो वह इस के पास आकर घंटो बैठने लगी और सारी आवश्यक वस्तुएँ चम्पा को दे जाती। नेकी कभी व्यर्थ नही जाती। विजया ने उनको आपत्ति मे सहायता दी थी, कैसे सम्भव था कि वह उसके काम न आती। शूरसेन के नेत्र खुले। उसने कैसा अपना बना बनाया घर नाश कर दिया। यदि विजया ऐसी साध्वी वा शील स्वभाव वाली न होती, तो उसकी वा उसके लड़कों की क्या दशा होती!

दो तीन सप्ताह के अनन्तर विजया अच्छी हुई। उस समय शूरसेन की अवस्था कुछ ऐसी विपरीति हो गई कि वह प्रति-क्षण विजया का आज्ञाकारी रहता, जो कुछ वह कहती वह करने के लिये उद्यत हो जाता। विजया ने अच्छे होने पर अपने ऋण दिये हुओं पर रुपये ले करके शूरसेन को काम काज करने की सम्मति दी। सदाचारिणी असंकुचित व्यवहा-रिणी स्त्री की संम्मति से बरस दो बरस के अनन्तर उसकी दशा बहुत कुछ सँभल गई। और यद्यपि पहिली सी दशा नही हुई परन्तु वह अब अपने खाने पीने से प्रसन्न थे और शूरसेन का घर संसार में श्रेष्ठ स्वर्ग-धाम बन गया।

१२—द्रौपदी

दुख में सुख में जो साथी हों, ऐसे यहां दिलदार कहां ।
रंज में ग़म में साथ न छोड़ें, ऐसे सच्चे यार कहां ॥
दिल में गहरी हमदर्दी हो, वह दिलवर ग़मख़्वार कहां ।
जुल्म सहैं और लब न हिलावें, ऐसे नीकोकार कहां ॥
इनकी कदम की खाक पाक को, हम आंखो से लगायेंगे ।
जान से दिल से इनपै फिदा हो, गुण हम उनका गायेंगे ॥

पद पंचाल देश का राजा था। पंचाल देश को आज कल रुहेलखण्ड कहते है। इस देशाधिपति की दो सन्तति थी—धृष्टद्युम्न और द्रौपदी। पूर्वोक्त राजकुमार द्रौपदी से बड़ा था, पर भाई बहन दोनों का पालन-पोषण साथ-साथ हुआ था। द्रौपदी सौन्दर्य्य मे अद्वितीय थी। उसके नेत्र कमल की तरह प्रसन्न और सूर्य की तरह प्रकाशमान थे। शरीर का रंग श्याम था, परन्तु बाल नीले और घुँघराले थे। शरीर से सर्वदा एक प्रकार की सुगन्धि आती थी। देश-देश के राजा इस सुन्दरी क पाने के अभिलाषी थे। द्रुपद की इच्छा थी कि लड़की अपने वास्ते आप अपना पति स्वीकार करे, इस उद्देश्य से उसने स्वयंबर की घोषणा कर दी। जिससे सब देशों के राजकुमार आकर इकट्ठे हो और द्रौपदी उनमें से जिसको योग्य समझे उसके साथ व्याही जावे। और इस बात से कि कही बाहरी सुन्दरता के धोके मे राजकुमारी छली न जावे.

उसने एक बड़ा धनुष बनवाया और ऊपर एक प्रतिक्षण घूमने वाली मछली का आकार बनवाया और विज्ञापन दिया कि "जो पुरुष नीचे शीशे मे मछली का प्रतिबिंब देखकर उस खास धनुष से मछली की आँख को तीर से बेध जायगा, राजकुमारी उसी से ब्याही जावेगी।"

राजा महाराजा, राजकुमार उस स्वयम्बर को सुनकर पंचाल देश की राजधानी में आये। द्रुपद ने सबका आदर सत्कार किया और उनके रहने के लिये संगमरमर और सोने चाँदी के महल खाली कर दिये, जिनके आँगन, दालान और सीढ़ियों पर कीमती कपड़े बिछे थे। सारे महलों में सौ-सौ फाटक लगे थे, जिससे कि आने जाने वाले लोग सुगमता से आ जा सकें। जब नियत समय आ पहुँचा ब्राह्मण, क्षत्री, ऋषि मुनि सब वहाँ आये। कोई तो इस इच्छा से पधारे थे कि धनुर्विद्या का कर्तव्य देखेंगे और बहुतों का यह विचार था कि हम अपने बल से द्रौपदी को व्याह लावेंगे।

स्वयम्बर का स्थान खुला बनाया गया था। भूमि चतुष्कोण और स्वच्छ थी। चारो ओर बनावटी दीवारें खड़ी थी, परन्तु चारो ओर बड़े गोल दरवाजे लगे थे जिससे वायु के आने जाने में रुकावट न हो। जगह-जगह बाजे बज रहे थे। केवड़े गुलाब के फुहारे थोड़ी-थोड़ी दूर पर चल रहे थे, जिनकी सुगन्धि की लपक से देखनेवालों के दिमाग तर हो जाते थे। द्वारो पर कपड़े बँधे हुए थे, जिनको देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता था। नियत समय पर राजपुत्री सुन्दर वस्त्र पहिने, भूषणों से भूषित, हाथ में सुवर्ण का हार लिये उस स्वयम्बर के स्थान में पहुँची और आकर सिंहासन पर बैठ

गई जो उसके लिये बनाया गया था। सब ने उस समय की रीति के अनुसार सिर झुकाकर उसके सौदर्य्य की प्रशंसा की और राजकुमारी ने मुसकराते हुए और लज्जा से सिर नीचे किये उनका धन्यवाद किया। जिसने उसको दृष्टि भर कर देखा, उसने दूसरी ओर आँख नही की।

सब विस्मय की मूर्ति बने हुए टकटकी बाँधकर उसकी ओर देखने लगे। वह समय मौन धारण से नि शब्द था। इतने में राजकुमार धृष्टद्युम्न उठा। उसने सबके सन्मुख उच्च स्वर से कहा—"महाशय गण! इस सभा में हर पदवी के लोग उपस्थित है, मैं उनसे प्रार्थना करता हूँ कि यह धनुष है और मछली चक्कर लगा रही है, उसका प्रतिबिब नीचे शीशे में साफ़ दिखाई दे रहा है। यह पाँच वाण रक्खे हुए है कोई इसमे किसी एक वाण से भी मछली की आँख को बेध कर लेगा, मेरी बहिन द्रौपदी उसकी स्त्री होगी। वह पुरुष चाहे किसी जाति का, किसी धर्म का, किसी देश का और किसी हैसियत का ही हो। आज प्रत्येक पुरुष का समय है कि वह बड़ाई और यश को प्राप्त करे।" यह कहकर धृष्टद्युम्न बैठ गया। राजकुमार जो द्रौपदी की सुन्दरता के आधीन हो गये थे, उठे और धनुर्विद्या के कर्त्तव्य को दिखाने के लिये तत्पर हुए। शाल्यपत राजा धनुर्विद्या मे विख्यात था। वह धनुष झुकाने लगा, परन्तु अपना सा मुँह लेकर लौट आया। जरासिंध मगध देश के वीर योधा ने भी धनुष हाथ में लिया और उसको भारी पाकर चुपचाप पृथ्वी पर रख दिया और लज्जा से उस समय अपनी राजधानी को चला गया। मद्राधिपति शाल्य ने भी यत्न किया परन्तु सफल न हुआ। धनुष क्या था, बुरी बला थी—सहस्रो राजकुमार उठे और

सब का उद्योग निष्फल हो गया। धृष्टद्युम्न ने दूसरे बार उठकर फिर कहा—"मित्रगण ! जिन-जिन क्षत्रियो ने बल परीक्षा की, सब का उद्योग व्यर्थ हो गया। क्या अब ब्राह्मण या और किसी प्रकार के लोग प्रयत्न करने को उद्यत नहीं ?" परन्तु उसी समय एक नवयुवा पुरुष ब्राह्मण का वेष किये हुए उठा और द्रौपदी के मनोहर मुसकराहट में एक तरह का उद्वेग प्रतीत करता हुआ आगे बढ़ा। वह उछल कर उस स्थान पर आ खड़ा हुआ और क्षणमात्र में एक ही वाण से मछली की ऑख वेध दी। वाण का निशाना लगना था कि तड़ाक की आवाज हुई और ब्राह्मणों के जय-जयकार और प्रशंसाओं से महल गूंज उठे इस से धन्यवाद के अतिरिक्त यह भी आशा थी कि देखो जो काम क्षत्रियों से नही हो सका उसको एक निर्धन ब्राह्मण ने पूरा किया। ब्राह्मण और क्षत्रियों की सभ्यता नई बात नही है। जिस समय से वर्णाश्रम धर्म बिगड़ना आरम्भ हुआ, इनमें निरन्तर बाद विवाद होने लगे और देश स्वार्थ परता का दास बन गया द्रौपदी ने बड़े हर्ष से सुवर्ण-माला उसके गले मे डाल दी और द्रौपदी को उस नवयुवक का रूप पसन्द आया और खुशी से उसने दोनों हाथ से स्वर्ण का हार उसके गले मे डाल दिया।

यह नवयुवा कौन था ? क्या सचमुच वह ब्राह्मण था ? नही, सभा मे कई पुरुषों के मन में उसके वंश के विषय में संदेह उत्पन्न हुआ। वह ब्राह्मण पुजारी नही था, वरंच एक आपदग्रस्त राजपुत्र था, जो भेष बदल कर पंचाल देश में आया था और तहक़ीक़ात के परिणाम ने इस संदेह को निवृत्त कर दिया।

नवयुवक वीर अर्जुन पाण्डु नाम बड़े महाराज का लड़का और युधिष्ठिर का छोटा भाई था। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन,

नकुल, सहदेव पाँचो भाई दुर्योधन की शत्रुता से भागकर इधर चले आये थे, क्योंकि महाराज धृतराष्ट्र दुर्योधन के अन्धे पिता ने हस्तिनापुर का प्रान्त इनसे छीन लिया था और वह निर्बलता से इधर-उधर भाग रहे थे । और जब द्रुपद राजा को अर्जुन का राजवंशी होने का वृत्तान्त विदित हुआ, वह मन में बड़ा प्रसन्न हुआ। सारे नगर में आनन्द के बाजे बजने लगे और धूमधाम से द्रौपदी और अर्जुन का विवाह कर दिया गया और समय पाकर फिर वह हस्तिनापुर मे जाकर राज्य करने लगे। द्रौपदी से चार पुत्र उत्पन्न हुए, जिनकी हँसी और खेल के शब्द से घर की दीवारें गूंज उठती थी। माता पिता और इष्ट मित्र इनको देखकर प्रसन्न होते थे क्योंकि वह निरोग, युवक और सुन्दर थे। परन्तु यह प्रसन्नता के दिन बहुत दिन तक न रहे। दुर्योधन स्वभाव का खोटा और कपटी था। वह सदा इस चिंता में रहता था कि किसी भाँति युधिष्ठिर से अपना क्रोध निकाले। वह मन ही मन मे उसकी सर्व-प्रियता और सचाई को देखकर जल जाता था और समय पाकर दुःख देने का सामान भी उत्पन्न करता था। अन्धे महाराज का कुछ वश नही चलता था। निदान उसको समय मिल गया और उसने युधिष्ठिर के साथ ऐसा बुरा काम किया कि जिसका परिणाम महाभारत का युद्ध है। अनुमान से जान पड़ता है कि उस समय के व्यवहारानुसार जुआ खेलना बुरा नही समझा जाता था। राजा लोग विशेष करके इसमे अपना मन बहलाव करते थे। इस अभिप्राय से एक घर बनाया गया था, जिसमे खंभे लगे थे। युधिष्ठिर द्यूत-विद्या मे निपुण था। दुर्योधन ने कहला भेजा—"आओ, सब हम और तुम बाजी लगाकर जुआ

खेलें।" राजपूत लोग लड़ाई और जुआ के समय इनकार नही करते थे। इनकार करना अपमान समझा जाता था। युधिष्ठिर ने खेलना आरम्भ किया, पॉसा में सीसा मिलाया हुआ था, युधिष्ठिर को उसका पता नही था, वह निरन्तर हारता गया। नौकर चाकर, धन वा दौलत राज पाट सब हार गया। उस ग़रीब को क्या खबर कि छल का खेल हो रहा है। उसने कहा—"आज मेरे भाग्य का पलड़ा ऊँचा हो गया है, अब कुछ बाकी नही रहा।" हाथी घोड़े आदि सब हार जाने से युधिष्ठिर लज्जित था। दुर्योधन ने कहा—"अब क्या उपाय है, द्रौपदी को दावो पर लगादो।" सुनने वालो के रोंघटे खड़े हो गये। निरुत्साहित युधिष्ठिर लालच की रस्सी में फँस गया, क्या जाने सौभाग्यवती द्रौपदी के भाग्य से पाँसा पलट आवे और वह हारी हुई बाजी को जीत ले। इस बार भी पाँसा ने सहायता न दी और अब जाकर युधिष्ठिर ने देखा बड़ी भूल हुई ऐसा नहीं करना चाहिये था, परन्तु अब क्या हो सकता था। वह लोग जो अपनी स्त्रियो का अपमान किया करते हैं भली भाँति समझ लें कि भारत की दुर्दशा का आरम्भ स्त्री जाति के अपमान से होता है। स्त्री का अपमान भी अपनी जाति की दरिद्रता और विनाश का कारण हो रहा है। यदि यही ढंग रहा, तो (परमात्मा वह दिन न दिखाये) आर्य-जाति के समाप्ति का कारण दिखाई दे रहा है। जो स्त्रियो की हानि करता है, वह बड़ा अधम नीच है। जो जाति अपनी स्त्रियों पर अन्याय करती है, वह कंगाल और दास बन जाती है। अन्य वंश के पुरुष उस वंश को पाँव के नीचे कुचल देते है। गौतम बुद्ध ने सच कहा है कि—"जो अपनी स्त्रियों का आदर करते हैं, उनके लिए नाश का भय नहीं है।" परन्तु

लोगो ने इस शिक्षा को नही सुना, उसके विरुद्ध काम किया। आज जिसका परिणाम देख रहे है। यदि अब भी देश की भलाई की इच्छा हो, तो स्त्री-जाति का मान करो और उनकी भलाई का उपाय सोचो।

शोक! युधिष्ठिर द्रौपदी को हार गया। दुर्योधन और उस निर्लज्ज पुरुष के भाई बन्धु प्रसन्नता के मारे फुले नही समाते थे। उसने ज़ोर से कहा—'द्रौपदी को घसीटते हुए लाओ। वह घर मे झाड़ू दे और दासियों के साथ रहे।" जब द्रौपदी ने यह बात सुनी, उसको निश्चय नही हुआ कि युधिष्ठिर ने ऐसी भूल की होगी। और दुर्योधन क्षत्री कहलाते हुए भी उसकी हानि करेगा। दूसरी बार आदमी फिर आया और वह नही आई। तीसरी बार दु शासन गया और उसने दुर्योधन की आज्ञा का पूर्ण पालन किया। संसार में ऐसा अनर्थ किसी असभ्य नीच और धर्म-हीन जाति में भी नही देखा गया था कि कोई पुरुष किसी राजकुमारी के केश व साड़ी पकड़ कर घसीटता हुआ सभा में ले आवे। द्रौपदी के होश हवास ठीक थे, वह आई और अहंकार अभिमान से सभा के सन्मुख खड़ी हो गई। सब चुप थे परन्तु भीम के होठ क्रोध से फरफरा रहे थे। उसने कहा—"यदि मैं भीम हूँ, तो दु शासन का रुधिर पीऊँगा।" युधिष्ठिर ने समय देखकर आँखों के इशारे से मना किया। अर्जुन और भीम चुप हो रहे, परन्तु दुर्योधन की सभा मे सभ्यता का नाम नही था। उसने कहा—"दासी, देख आज से तू हमारे घर में झाड़ू देगी।" श्रेष्ठ राजपुत्री क्रोध और क्रूर दृष्टि से देखती हुई खड़ी थी। उसकी दशा देखकर सारी सभा में खलबली मच गई। सब ने इस अनुचित व्यवहार के हटाने की प्रार्थना की परन्तु

दुर्योधन कब किसी की सुनने वाला था। उसने उसको जुए में जीता था। आज से उस पर उसका स्वत्व था, जो जी में आवेगा करेगा। जब धृतराष्ट्र ने सुना वह चिल्लाता हुआ सभा में आया और इस बुरे काम पर धिक्कार करने लगा। भीष्म-पितामह बठा था उसने कहा—"याद रक्खो, इस अपराध का दण्ड कठिन होगा।"

इस बाद-बिबाद का यह फल हुआ कि वह प्रवास में जीवन व्यतीत करने लगे और युधिष्ठिर ने अपने भाइयो के साथ बन की ओर प्रस्थान किया। द्रोपदी ने कहा—"मैं भी साथ-साथ जाऊँगी, चाहे जंगल हो चाहे महल, मुझे अलग रहना स्वीकार नही है।" कुन्ती युधिष्ठर की माता थी। जब उसने सुना कि मेरे पुत्रो पर आपत्ति पड़ी है, उसको बड़ा असह्य शोक हुआ, परन्तु क्या करती, संसार की बातो पर किसी का कुछ अख़्त्यार नही है। जब लड़के इससे मिलने को आये। कुन्ती ने सब को सामान्य शिक्षा देकर अपने बर के साथ बन जाने की आज्ञा दी। द्रोपदी से कहा—"बेटी! मुझ को बिश्वास है, कि मेरे पुत्रो को क्लेश न होगा, तू स्त्री-धर्म को जानती है, तेरा व्यवहार उनके शल्यो पर मरहम रूपी होगा। स्त्री पति के पास प्राणो की तरह शोभती है, वह सब को अपने वचनो के वश करके शांति व सुख से प्रसन्न कर सकती है। पुरुष चाहे कितने ही बुद्धिमान और वीर हो, परन्तु उनके जीवन के दिन उनसे अच्छे व्यतीत होने असम्भव है। स्त्री थोड़े ही में सब कुछ कर सकती है, वह लक्ष्मी है, उसके हाथ मे बरकत है, इस लिए हे बेटी, जहाँ तू है वहाँ क्यो मेरे पुत्रो को क्लेश होगा! तू अपने धर्म पर स्थिर रह और आपत्ति के समय उनकी सहायता कर।"

पाण्डव शूरवीर थे और उनके सुहृद सहायता करने के लिए उद्यत रहते थे, परन्तु वे चुप-चाप अपने दैव पर विश्वास रखने लगे। उन्होंने चुपके से प्रवास की तैयारी कर ली। आज कल के लोग इस पर आश्चर्य करते है कि क्या यह सम्भव है कि कोई पुरुष जुवा मे इस तरह माल, दौलत हार कर प्रवासता स्वीकार करता है। परन्तु वह समय और था। सच्चाई आर्य-जाति का बीज था। वह कभी अधर्म करने पर कमर बाँधना स्वीकार नही करते थे। झूठ से उनको ग्लानि थी। उनका व्यवहार सच्चा था। साँसारिक व्यवहार के लिए उनको झूठी सच्ची चमक दिखाना अभिमत नही था।

पहिले पहिल द्रोपदी के लिए वनवास बड़ा दुःखदायक जान पड़ा, क्योंकि उसने बड़ी उत्तम रीति से आज तक जीवन व्यतीत किया था। उस दीन ने इन आपत्तियों को कब देखा था, परन्तु कुछ दिन के अनन्तर ईश्वरेच्छा समझ कर वह प्रसन्न हो गई। उसने देखा संसार मे अपराधी वा पापी पुरुष आनन्द से जीवन व्यतीत कर रहे हैं। परन्तु नेक और सच्चे पुरुष दुःख भोगते हैं, क्या अद्भुत महिमा है। एक दिन जब पाण्डव उदास बैठे थे और उनका भी बिचार ऐसा ही था, द्रौपदी ने इस बात पर विचार करना आरम्भ किया। उस समय जो बचन उसकी बाणी से निकले थे वह पढ़ने के योग्य हैं।

उसने कहा था—"महाराज ! ईश्वर और उसके भक्त में माता पिता और पुत्रों का सम्बन्ध है। जैसे माता पिता अपने बच्चों के सुख दुःख का निरीक्षण करते हैं, उसी प्रकार ईश्वर भी उनके साथ व्यवहार करता है। माता पुत्र को आप गोद में लेकर जर्राह से बच्चे के फोड़े मे नश्तर दिलाती है, ताकि

उसको आरोग्यता हो जावे। फोड़ा बच्चे के कुपथ्य करने से और बेपरवाही से निकल आया था, उसका परिणाम कुछ न कुछ होने वाला ही था। प्रकृति ने प्रत्येक काम के शुभाशुभ फल नियत कर दिये है। यदि लड़के की खाने-पीने उठने-बैठने मे रक्षा की जाती तो यह रोग क्यो होता। ऐसे ही हम लोग प्राय जान बूझकर और कभी कभी भूल से भी बुरे काम कर बैठते है जिनका फल अवश्य भोगना पड़ता है। ईश्वर अपनी दया से उनका फल देता है और जब तक यह फल भोग नही लिया जाता, तब तक मन शुद्ध नही होता अर्थात यह मानो एक प्रकार का अपराध की क्षमा का उपाय है। इन पर ग्लानि करने की आवश्यकता नही, ईश्वरेच्छानुसार रहना परम धर्म है।"

इसी प्रकार चिरकाल तक विचार करने के अनन्तर बुद्धिमती महारानी ने इस विषय को बदल दिया और जो कुछ उन्होने विचार करके उनसे कहा, उसका यहाँ पर अनुवाद करना उचित समझते है—

"कर्म से हम पर आपद् आती है, कर्म से हम सुख दु ख क भागी होते है, इस वास्ते कर्म करना मुख्य है। मनुष्य कर्म करने से स्वतन्त्र होता है, इसलिये कर्म आवश्यक है। कर्म अपने प्रवाह से अनादि है, न उनका अन्त है न उनकी आदि है, क्योकि सृष्टि प्रवाह सनातन है। कौन कह सकता है कि कब से है, कौन पुरुष निष्कर्म रह सकता है? इस प्रकार से कर्म करना प्रकृति का नियम है, इसलिये कर्म करने ही पड़ते है। प्रकृति के परमाणु घूमते रहते है, इनमे भी परिवर्तन की अवस्था प्रवृत्त रहती ह। इसलिये हम सबको अवश्यमेव कर्म करने चाहिये। किसान ज़मीन जोतता है, हल चलाता है, बीज

बोता है, सूर्य्य चाँद उसको पकाते हैं, मेघ वृक्ष को सामर्थ्य देता है। जब पककर खेती तैयार हो जाती है, किसान खुश होकर फसल काटता है। खेती उसको फल देती है। जो परिश्रम करता है वह फल पाता है। विचार से आप भी चिन्ता वा शोक को छोड़कर काम करो जिससे आपद् दूर हो। वार्तालाप से कहाँ तक दुःख वा शोक की न्यूनता हो सकती है?'

प्रवास में राजकुमारी ने कैसी आपत्तियों का सहन किया जिनका महाभारत में वर्णन है, परन्तु द्रौपदी सदा उनके साथ रहती थी। मधुर वचनों से, सेवा से और विचार से प्रतिक्षण उनके शोक नाश के उपाय सोचती रहती थी और उनका हृदय निराशता वा शोक की अँधेरी के समय कभी-कभी प्रसन्न करने वाली आशा की किरणों से प्रकाशयुक्त हो जाता था। बारहवें वर्ष की समाप्ति होने पर उनको एक बड़ी भारी शोक कारिणी आपद् का सामान करना पड़ा, उसका यहाँ लिखना योग्य है। द्रौपदी वन की आपद् के समय भी प्रतिदिन अधिक सुन्दरी होती गई। एक दिन किसी बन के सरदार ने उसको देख लिया और समय पर उसको पकड़ ले गया। पाण्डवों को थोड़ी देर के अनन्तर विदित हुआ। सरदार का पीछा किया गया। उसको पकड़ कर बीर राजपूत द्रौपदी को छुड़ा लाये और सरदार को संग्राम में जीतकर पकड़ लिया। जब वह युधिष्ठिर के सन्मुख किया गया तो उसने कहा—"मैं पाण्डवों का दास हूँ।" तब युधिष्ठिर ने द्रौपदी के कहने पर उसको छोड़ कर इस शर्त पर स्वतंत्रता दी कि वह उनके विषय में किसी को सूचना न देगा।

द्रौपदी का क्रोध शान्त हो गया। उसने कहा—"इसने

अपने अपराध का दण्ड पा लिया है, हमको सदैव पारितोषिक और दण्ड एक जैसा देना चाहिये।" युधिष्ठिर की भी यही सम्मति थी, उसने सरदार को देखकर कहा—"लो अब तुम स्वतन्त्र हो, परन्तु कहते लज्जा आती है, तुमने एक श्रेष्ठ रानी के साथ ऐसा अन्याय किया है। क्या तुमको इस बात से लज्जा नही करनी चाहिये। पुरुष ऐसा कभी नही करते। अब तुम शान्ति से अपने घर जाओ परन्तु आगे के लिये शपथ करो कि अब ऐसा न करूँगा।" सरदार लज्जित हो बड़े शोक के साथ उनसे बिदा हुआ।

प्रवास के बारह वर्ष समाप्त हो गये, तेरहवाँ वर्ष छुपकर किसी नगर में व्यतीत करना था। इसके अनन्तर फिर उनको अपना राज्य माँगने की आज्ञा थी, परन्तु माँगने वा पाने में बड़ा अन्तर है। जो भिक्षुको की भांति माँगते हैं उनके साथ भिक्षुकों के तुल्य बर्ताव किया जाता है। चिट्ठी-पत्री का व्यय-हार आरम्भ हुआ। आधा राज्य माँगा गया और प्रण किया गया जो कुछ हुआ सो हुआ यदि अब आधा राज्य दिया गया तो लड़ाई झगड़ा न किया जावेगा।

परन्तु दुर्योधन ने कहा—"मैं सुई की नोक के बराबर भी पृथ्वी नही दूंगा।" अन्त में यही ठहराया कि युद्ध के बिना और किसी प्रकार इसका फैसला नही होगा। अन्त में सारे देशो के राजा महाराजा कुरुक्षेत्र की भूमि में इकट्ठे हुए। कोई किसी का और कोई किसी का सहायक हो गया। यह बड़ा घोर संग्राम हुआ था। पानीपत और थानेश्वर की रण-भूमि कई लड़ाइयों के लिये प्रसिद्ध है। प्रायः इन सब लड़ाइयों से दीन भारत को आपत्तियाँ उठानी पड़ी। उस युद्ध में कौरवों की पराजय हुई और बहुत से लोग दोनों

ओर के मारे गये। पाँचो पाण्डव, द्रौपदी हस्तिनापुर आये; यहाँ धृतराष्ट्र का मिलाप इनके साथ बड़ा शोककारक हुआ।

महाभारत के पराजय के अनन्तर द्रौपदी पर एक और बड़ी आपत्ति आ पड़ी। उसके पुत्र युवा हो गये थे। जब दुर्योधन युद्ध से भागकर एक तालाब में छिप रहा था, अश्वत्थामा ने समझा, यदि मैं अर्जुन के पुत्रो का सिर काटकर लाऊँ, तो क्या जाने मरते समय उसकी आत्मा शांति पायेगी। इस इच्छा से वह छिपकर छोटे बच्चो का सिर काटकर मरते हुए दुर्योधन के पास उठा लाया। उसने धिक्कार किया और कहा—"इन बच्चो से मेरी शत्रुता नही थी, मुझे तो इनके पिता और चचो से शत्रुता थी।"

द्रौपदी के मन को पुत्रो की मृत्यु से बड़ा दुःख हुआ। उसने कहा—"जब तक मेरे पुत्रो का मारनेवाला न मारा जावेगा, मुझे शान्ति न होगी।" उसकी प्रतिज्ञा को सुनकर पाण्डवों ने अश्वत्थामा को पकड़ लिया। परन्तु जब उसको राजपुत्री के आगे किया, उसको देखकर द्रौपदी ने कहा—"तू तो गुरू का पुत्र है। तुझको क्या मरवाऊँ।" निदान उसके मस्तक से रुधिर निकाला गया और मणि निकाली गई, जिसको आज कल 'कोहनूर' कहते है। मणि द्रौपदी को दी गई, राजपुत्री ने वह मणि अर्जुन को दी कि यह तेरे किरीट के योग्य है और अश्वत्थामा को छोड़ दिया। इसके अनन्तर महाराज युधिष्ठिर के राज्याभिषेक का उत्सव किया गया। परन्तु पाण्डवो में से कोई प्रसन्न नही था। अपने-अपने सम्बन्धियो की मृत्यु ने संसार को अँधेरा बना रक्खा था। इसलिये अन्त में वह सब शोक संहारते हुए हिमालय पर्वत पर जाकर हिम मे गल गये और द्रौपदी ने भी उन सब के

साथ प्राण दिये। द्रौपदी में एक विशेष प्रकार का गुण था। जो और किसी सती-चरित्र मे न मिलेगा। यह बहुत ही श्रेष्ठ थी। यह केवल विदुषी न थी वरंच राजकीय कोष का हिसाब भी रख सकती थी और हाथी घोड़े आदि का प्रबंध उसके ही आधीन था।

आज उस साध्वी देवी को मरे कितने हज़ार वर्ष हो चुके है, परन्तु उसका यश आज तक प्रकाश हो रहा है और लोग उसकी कथा को बर्कत का कारण समझते हैं।

१३—महारानी दमयन्ती

हैं हैं यह बेवफ़ाई तुम्हें कैसे भा गई।
तक़सीर क्या थी दिल में जो वहशत समा गई॥
जागी तमाम रात थी मैं नींद आ गई।
तुम छोड़ भागे मुझ पै घटा ग़म की छा गई॥
मैं तीरःबख्त हिज्र की रातों में रोऊँगी।
रो रो के इस जुदाई में जाँ अपनी खोऊँगी॥

प्राचीन समय मे बरार प्रान्त में विदर्भ देश था। भीम वहाँ का राजा था। उसके धैर्य और वीरता की चारों ओर धूम मच गई थी। शत्रु लोग उसका नाम सुनकर काँपते थे, परन्तु उसकी प्रजा उसे प्राणो से अधिक प्यार करती थी। इस पृथ्वी-पति की पुत्री रूपवती और अद्वितीय सद्गुणी थी और

राजपुत्री का नाम दमयन्ती था। उसका सौंदर्य्य सारे जगत् में विख्यात था। सांसारिक चित्रकार उसके अवयवों की रचना और लावण्य को देखकर उसको विधाता के हाथो से निर्मित की हुई समझते थे। वह अपने घर में माता-पिता, भाई-बन्धु सबको प्रिय थी और राज-रानी और राजपुत्रों ने उसको अपने नेत्रो का तारा बना रक्खा था। जब उसकी आयु तेरह वर्ष की हुई, राजा ने उसे दिल बहलाने के लिये सारा सामान इकट्ठा कर दिया। सौ दासियें हरएक समय उसकी सेवा के लिए खड़ी रहती थी और हर प्रकार के भूषणो से अलंकृत की हुई दमयन्ती सखियो के बीच ऐसे शोभती थी जैसे तारों के बीच चंद्रमा। संसार में ऐसी कोई स्त्री रूपवती नहीं थी, जैसी दमयंती थी और सब लोग उसको देखकर प्रसन्न होते थे।

जैसे दमयंती सब सुंदरियों में सुन्दरी समझी जाती थी, वैसे ही नल वीरसेन निषध देश के राजा का पुत्र भी सब से श्रेष्ठ समझा जाता था। नल वेद, वेदांग, शास्त्र, दर्शन, उपनिषद् ज्योतिषादि शास्त्रों में पूर्ण था और सेनाधीशता में अद्वितीय था। इसमें एक दोष भी था कि यह जुआ खेला करता था। इस व्यसन के कारण उसको बड़ी-बड़ी आपत्तियें उठानी पड़ी। जिस समय वह अपने पिता की मृत्यु के अनन्तर राज-काज करने लगा, उस समय भी इसको जुआ खेलने का व्यसन था। दमयन्ती के अत्युत्तम रूप और नल की बुद्धिमता और चातुर्य्य की चारों ओर चर्चा होने लगी। इन दोनों में भी एक दूसरे के गुण सुन कर आपस में बिन देखे अनुराग पैदा हो गया।

जब उनके इष्ट मित्रों को यह विदित हुआ, तो जगह

जगह नल-दमयन्ती के प्रेम की बातें होने लगी। कुछ दिनों के अनन्तर दमयन्ती की ऐसी दशा होने लगी कि उसका सन्तोष जाता रहा। जब भीम को खबर मिली कि राजपुत्री प्राय बीमार रहती है और उसको निषध देश के राजा से आसक्ति है। उसने प्राचीन रीति के अनुसार स्वयम्बर करने की अभिलाषा की क्योंकि लड़की की ओर से विवाह का संदेश भिजवाना उस समय की प्रणाली के विरुद्ध था। जब स्वयम्बर का दिन आया, सारे देशों के राजपुत्र विदर्भ देश की राजधानी में एकत्रित हुए। भीम ने सब का आदर किया। कवि लोग लिखते है, कि राजाओं और राजपुत्रों की सभा पर्वतीय वन के सदृश मालूम होती थी, जिसमें इतने शेर चीते इकट्ठे हुए थे। वह सब अच्छे सुडौल थे परन्तु उनक देखने से जान पड़ता था कि उनके दिल घबराहट और चंचलता में पड़े है। सब नख शिख सुन्दर थे। जब दमयन्ती उस स्वयम्बर-भूमि में पधारी, तो उन सब राजाओं की दृष्टि उसकी ओर लगी। क्योंकि सब अन्तःकरण से उस सुन्दर राजपुत्री के अभिलाषी थे। परंतु दमयन्ती ने नल को स्वीकार किया। उसने लज्जित होते हुए और नेत्रों को नम्र किये हुए उनके गले में फूलों का हार (जयमाला) डाल दी। दैव-वश से नल का कार्य सिद्ध हो गया।

दूसरे राजपुत्र उदास होकर अपने-अपने देश को चले गये और भीम ने दूसरे दिन नल और दमयन्ती का बिवाह कर दिया और विवाह के अनन्तर नई बधू अपने पति के घर गई। यहाँ चिरकाल तक उसका जीवन आनन्द पूर्वक व्यतीत हुआ। वह एक दूसरे को मन से चाहते थे और जहाँ दो चाहने वालों के इस तरह दिल मिलते हैं, उसको स्वर्ग-धाम या बैकुण्ठ कहते हैं।

दो सुन्दर लड़के उस विवाह के फल थे। जब छोटे-छोटे पाँव से वे चलते और तितलाती जिह्वा से बाते करते, तो माता पिता का मन प्रसन्नता से उछलने लगता। परन्तु शोक! इस संसार का आनन्द शोक से शून्य नही है। शहद के छत्ते के चारो ओर डसने वाली मक्खिये रहती है और गुलाब वा कमल के सुन्दर वा कोपल पंखड़ियो के नीचे काँटा छुपा रहता है। नल मे एक घृणामय व्यसन था। विवाह के अनन्तर यद्यपि उसने कुछ दिवसों तक पासों की ओर ध्यान नही दिया था परन्तु वह दुर्व्यसन उसके मन के परदो में चोर की तरह छिपा हुआ विद्यमान था। पुष्कर नामी उसका शत्रु रूप कपटी मित्र नल को धोखा देने की इच्छा से उसके पास आया। नल ने पहिले तो बहुत बहाने किये परन्तु कर्म-गति वा संस्कार का प्रभाव प्रबल है, वह खेलने पर उद्यत हुआ और क्षणमात्र में उसने सब कुछ खो दिया। दमयन्ती ने व्याकुल होकर उसकी ओर देखा, वज़ीरों ने इशारे से वा बातो से बहुत कुछ समझाया परन्तु नल पर जुए का भूत सवार था। उसने किसी की ओर ध्यान न दिया, न किसी की सुनी। दमयन्ती ने प्रधान को बुलाया, उसने कहा कि "नल राज तक हार गया। महारानी को अब इस देश में रहना उचित नही है। उचित यह है कि आप लड़को को लेकर विदर्भ नगर को चली जायँ।" परन्तु दमयन्ती ने कहा—"यह कैसे हो सकता है कि मृत्यु पर्यन्त साथ रहने की शपथ करने वाली स्त्री दुःख और आपत्ति के समय अपने पति को छोड़ दे। मैं अपने स्वामी के सुख वा दुःख की भागिनी हूँ। चाहे आपद् का पर्वत गिरे, परंतु मैं कभी उसको न छोड़ूंगी।'

राजा नल धन, जवाहरात, वस्त्र, भूषण, सोना यहाँ तक

कि राज भी हार गया, उसके पास कुछ नहीं रह गया। दुष्ट पुष्कर ने हँसकर कहा—"अभी और खेलो।" अब नल ने कहा—"मेरे पास कुछ नही रहा।" तब पुष्कर ने मुसकराते हुये कहा—"दमयन्ती को क्यों नही लगाते ?" नल यद्यपि द्यूत व्यसन से हारा हुआ था परन्तु ऐसे नीचपन को स्वीकार नही किया और उसने कहा—"नही।" और यह कहकर अपने घर से बाहर निकल आया। अब दीन कहाँ जावे और क्या करे ? इस दुष्ट व्यसन ने उसको कही का न रक्खा। अपने राज्य में उसकी दशा भिक्षुक की सी हो गई। उस समय का आचार व्यवहार और ही भाँति का था, लोग बात के धनी थे, प्रतिज्ञा पूर्ण करते थे। आज कल इस तरह की हार जीत को वैसी निगाह से कभी नही देखते। नल ने अपनी दशा-परिवर्तन को देखकर राजकीय वस्त्र उतार दिये और एक धोती कमर में बांधकर नंगे पाँव अपने इष्ट मित्रो से बिदा होकर शहर से निकल गया। दमयन्ती ने अपने पति का अनुसरण किया। उसने भी वस्त्र और भूषण उतार दिये और छाया की तरह पति के साथ हुई। जो लोग दुर्व्यसानी हैं वह स्मरण रक्खें—

जूवे की बदी है आशकारा।
राजा नल राज पाट हारा॥

राजधानी से निकल कर तीन दिन तक निरंतर वह मन्द-भाग्य पुरुष दमयन्ती को विदर्भ देश जाने की प्रेरणा करता रहा, परन्तु दमयन्ती ने कहा—"छाया तन से पृथक् कैसे हो ?" शोकातुर वा आपद्-ग्रस्त नल ने अपने हाथ से उस मार्ग का इशारा किया जो विदर्भ देश को जाता था। दमयन्ती ने डवडबाई आँखों से उसकी ओर देखा और रोकर कहा—

"मै तुम से जुदा न होऊँगी और आपत्ति के समय तुमको तसल्ली दूंगी और तुम्हारी सेवा करूँगी। परन्तु नल का दु ख उस सुकुमारांगी स्त्री के दःखों को देखकर अधिक बढ़ता था।

तीसरी रात को दोनो प्रवासी वन में वृक्ष की छाया के नीचे ठहरे। तीन दिन से बराबर भूखे प्यासे मार्ग के श्रम से थक गये थे। दोनो पृथ्वी पर लेट रहे। दमयन्ती को नींद आ गई। नल की ऑखें खुली थी, वह बे-बसी पर चिन्ता करता था। क्या था, क्या हो गया? राज पाट छूटा, सुहृद मित्र अलग हो गये। घातक घनघोर पशुमय बनो में रहने की जगह मिली। यह सब कुछ हुआ, वह इससे भी अधिक आपत्ति सहार सकता, परन्तु दमयन्ती का दु ख उसको बहुत तापता था। उसने मन में सोचा, यदि मै इसको छोड़कर चला जाऊँ, तो यह आपही अपने पिता के घर की ओर चली जावेगी और वहॉ आनंद से रहेगी। रात अँधेरी थी; आपद्-ग्रसित नल ने चिथड़े लपेटे हुए महारानी की ओर देखा आंखों से अश्रुपात होने लगा। उसने सोचा, दमयन्ती को छोड़कर चला जाना सुगम है। परंतु जब वह चलने के लिये उठ खड़ा हुआ, तो उसका पॉव आगे नही बढ़ता था। निरपराध दमयन्ती के ख्याल ने और उसकी पहिली प्रीति के स्मरण ने मन तो तड़का दिया और नल का पाँव थोड़ी देर के लिये जमीन पर जम गया। परंतु बे-सुध राजा ने अन्त में उस बेचारी को उभरने का समय नही दिया और चिरकाल अश्रुपात के अनन्तर उसने अपने हृदय पर सबर का पत्थर धर लिया और वह चुपके से एक ओर चला गया।

प्रात काल दमयन्ती ने ऑखें खोली। और आश्चर्य के स्वप्न ने उसको निद्रा में भी विस्मित कर रक्खा था। उस

ने करवट बदली ताकि नल से अपने स्वप्न का फल पूछे। नल दिखाई नही दिया। दमयन्ती ज़ोर से चीख उठी। उसको असली बात की खबर हो गई और क्षणांतर में शोक से बे-सुध हो वह पृथ्वी पर गिर पड़ी। जब सुध आई वह चिल्लाने लगी—"हा प्राणपति! मैंने क्या अपराध किया! तुम ने मुझे क्यों त्याग दिया? इस निर्जन बन मे मेरा कौन है? राजन्! मैं कैसे समझूं तुम मुझको छोड़कर चले गये। यह बात असम्भव है। तुम वृक्षो की आड़ में छिपे हो। अधिक परीक्षा न कीजिये, शीघ्र आइये और अपनी रोती हुई दमयन्ती को धैर्य दीजिये। अजी, आप क्यों नहीं उत्तर देते? आप में ऐसी निर्दयता कहाँ से आ गई। प्राणपति, आकर मुझे ढाढस दो।" परन्तु नल नही आया दमयन्ती पर शोक का पर्वत गिर पड़ा। वह इधर उधर वृक्षो की आड़ में ढूंढने लगी। दूसरी बार वैसी ही बे-सुध हो गई। होश आने पर फिर वैसे ही चीखने वा चिल्लाने लगी। पास ही वृक्ष के खोखले में एक बड़ा भारी अजगर सर्प था। उसने दुखिया को आवाज सुनी और पीछे से आकर वह उसकी गर्दन में लिपट गया। दमयन्ती ने सोचा, अंतिम समय आ गया। शोक और निराशता ने उसके चिल्लाने की ध्वनि को दूना कर दिया। तीसरी बार वह बड़े जोर से चिल्लाई—"राजन्! शीघ्र आकर बचाओ, नहीं तो क्षण भर में काम हो जावेगा।" परन्तु नल कहाँ था जो आता। वह तो उस समय कोसों दूर था। जीवन के दिन कुछ शेष थे, एक बहेलिया शिकार की तलाश में फिर रहा था। उसने ज़ोर से पुकारने को सुना और उसी समय वहाँ आकर उसने साँप को ललकारा। दुष्ट साँप उसकी ओर लपका। शिकारी के हाथ में तेज़ कटार

थी, ज्यों ही साँप ने अपने डंक को उसके शरीर पर चुभाया, शिकारी की कटार उसके सिर पर पड़ी। दोनो एक साथ भूमि पर गिरे। इसके अनन्तर रानी अपने पति की तलाश में निकली। उसने कहा—"या तो उसका पता मिलेगा या इस घने वन मे उसका नाम ले-लेकर मर जाऊँगी।" पास ही एक ऋषियों का आश्रम था, जहाँ भाँति-भाँति के फूल लगे हुए थे और स्थान रमणीक और दर्शनीय था। रानी उसी ओर चली। वहाँ कई साधु वृक्षों की छाल ओढ़े तपश्चर्या में मग्न थे। ये तपस्वी सांसारिक सुखो को त्याग और जितेन्द्रिय परमात्मा के ध्यान में ऐसे लीन थे कि जीते जी मानों मर चुके थे। उनका जीवन मृत्यु का जीवन था और वे अपने विचार मे दृढ़ प्रतिज्ञ और ध्यानावस्थित निर्जन वन को स्वर्ग-धाम बनाये बैठे थे।

रोती हुई दमयन्ती उनके पाँव पर गिरी और हिचकी ले लेकर अपने शोक की कहानी सुनाने लगी। साधुओ ने दया से कहा—"हे पुत्री, तेरी आपत्ति की कथा हमको विदित है। इस वन मे रहकर भी हम अनभिज्ञ नही रहते कि नगर में क्या हो रहा है? धैर्य कर कर्मों की अगाध गति को कोई नहीं रोक सकता। जब समय आवेगा, तब नल तुझ को मिलेगा। तेरे मित्र प्रसन्न और शत्रु लज्जित होंगे। परमात्मा तेरे पर कृपा की दृष्टि करेंगे। और हे रानी! राजाओ का वंश तेरे उदर से उत्पन्न होकर तुझे आदर से स्मरण करेगा और बिगड़े हुए पुरुषों को धर्म्म की शिक्षा के लिये तेरा चरित्र उपदेश करेगा और नल-दमयन्ती की कथा हर एक समय मे लोग आनन्द से श्रवण करेंगे।" रानी इन धैर्य्य-प्रद आर्ष वचनो से प्रसन्न हुई, परन्तु उसने साधुओं

से यह पूछा कि नल कब लौट कर आवेगा। कई घण्टे तक वह साधुओं के आश्रम की अतिथि बनी रही, वहाँ से निकल कर नल की तलाश में निर्जन वन में चक्कर लगाने लगी। इस व्यर्थ घूमने में उसने बहुत से सुन्दर-सुन्दर वृक्ष और रमणीक स्थान, मनोहर्षित, आनंद-दायक पर्वत और अति निर्मल स्रोत देखे, परंतु माया को लुभाने वाली आनंदप्रद वस्तुओं में अब उसके मन को आकर्षण करने की शक्ति नही रही थी। वह वन-वन में घूमती हुई अपने पति की तलाश करती थी और उसका नाम ले-लेकर पुकारती थी।

चलते-चलते राजपुत्री एक सौदागरों की टोली के पास को चली जो दरिया के किनारे डेरा लगाकर बैठी थी। और जब चीथड़े पहने हुए दुबली पतली दमयन्ती जिसके शरीर पर धूल और मिट्टी जमी हुई थी, पास आई और उस समुदाय के निकट पहुँची, तो बहुत से पुरुष उस बन वासिनी स्त्री को देखकर भयभीत हो गए। कोई चिल्ला उठे बहुतों को भय हुआ, कोई हँसने और क्रूर-दृष्टि से देखने लगे। सौदागरों में दो चार पुरुष ऐसे भी थे जिनके हृदय में दया थी। वह पास आकर पूछने लगे—"आपद्-ग्रस्त! तू कौन है? और इस भयानक वन में किसकी तलाश कर रही है?" राजपुत्री ने उत्तर दिया—"हे सौदागरों के सरदार! हे सज्जन पुरुषो! मैं राजपुत्री हूँ, राजा की बधू और राजा की स्त्री हूँ और मेरे पति पर आकस्मात् आपत्ति आ पड़ी है। उनको वन-वास दिया गया, वह घबराकर मुझे छोड़ गये, मैं उनकी तलाश कर रही हूँ।" सौदागरों के सरदार ने कहा—"हे सुन्दरि राजकुमारी! हम सब लोग सुबाहु सत्यवादी के राज्य की ओर जा रहे है। तू हमारे साथ चल, न

जाने उसका पता मिल जाय।" दमयन्ती आशा का सहारा पाकर उसके साथ हुई कई दिन तक आनन्द से यह टोली चलती रही, परन्तु जब वह अपनी यात्रा की अन्तिम मंज़िल पर पहुँचे, तो एक अचानक आपत्ति आ पड़ी। दिन की थकान से थकित होकर उन्होने एक झील के किनारे डेरा लगाया यह स्थान किसी पर्वत के पास था जिसमें बहुत से जंगली हाथी रहते थे। यह पालतू हाथियों को देखकर उनको मारने की इच्छा से उद्यत हुए प्रकृति नियम में यह विचित्र बात देखने में आती है, कि जब कोई जन्तु अपनी असली अवस्था से गिर जाता है या पुरुष उस पर अपना प्रभाव डाल देता है, तो वे जो असली स्वाभाविक दशा पर है ऐसे गिरे हुओ से न केवल घृणा ही करते हैं वरन् उनको मार डालते हैं। यह बात थोड़ी बहुत समस्त पशु पक्षी आदि जीवों में भी दिखलाई देगी।

बहुत से सौदागर भय से भाग गये। बहुत से लोग हाथियों के दाँतो से मरे। कोई पैरो से कुचले गये। हाथी और घोड़ो की भी यही दशा हुई।

दमयंती अन्य पुरुषो की तरह भयभीत हो घबरा कर भाग निकली और पहाड़ को एक गुफा में छुपकर अपने प्राण बचाये। वह एक कोने में छिपी हुई थी, बाकी और लोग भी उसके समीप छिपे हुए थे। जब उस स्थान में जाकर उनको हाथियों के पीछे से निश्चिन्तता हुई तो एक पुरुष कहने लगा—"यह अपने कर्म का फल है, पुरुष के दिन जब बुरे आते हैं, तब इस तरह की आपत्तिये सिर पर आ पड़ती हैं।"

दूसरे इसके उत्तर में कहने लगे—"नहीं-नही, हमने कोई भी ऐसा बुरा काम नही किया है, जिसका दण्ड हो। असल

बात यह है कि जब से यह उन्मत्त स्त्री हमारी टोली के संग आई है, तब ही से एक न एक आपत्ति आने लगी है। थोड़ा ठहरो, समय पर इसको पकड़ कर इसी जगह काट दो ताकि और आपत्तियो से शांति हो और इसके शरीर को दबाकर इसके ऊपर मिट्टी, पत्थर और घास डाल दो।"

दमयन्ती ने इस बात को सुन लिया और अब सब मनुष्य सो गये तो वह भय के कारण वहाँ से भी भाग गई, और अपने भाग्य की निंदा करने लगी—"शोक ! मैं कैसी अभागिन हूँ, जहाँ जाती हूँ वहाँ ही कुछ की कुछ आपत्ति आती है। यह केवल मेरे भाग्य का ही प्रभाव है कि जो स्वामी पर आपत्ति आई। लड़के बाले सब छूट गये।"

इस तरह के विचारो से हैरान होकर वह उसी राह की ओर चली जिधर का पता सौदागरों ने बात रक्खा था। कुछ दिनो के अनन्तर वह महाराज सुबाहु की राजधानी मे पहुँची। जब शहर के लोगो ने देखा कि वह चिथड़े लपेटे हुए है और उसके शरीर की हड्डियाँ दिखाई दे रही हैं। बाल बिखरे हुये, मुख पर धूल और मिट्टी लगी हुई है, लोगो ने उसको सौदायी समझा। लड़के उसके पीछे-पीछे राजा के महल तक गये, जिधर वह निर्भयता से चली जारही थी।

अन्त पुर से सुबाहु की माता ने उस अद्भुत स्त्री को देखा। वह बड़ी साध्वी और दयालु थी। उसने अपनी दासी से कहा—"इस स्त्री को अन्दर बुला ले।" सुबाहु की रानी उसकी कथा को सुनकर काँप उठी और उसके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। जब दमयन्ती ने उससे अपना हाल कह सुनाया, तब वह राजा के पास चली और उससे दमयन्ती को अपने पास रखने की आज्ञा माँगी। सुबाहु ने मान

लिया और थोड़े ही दिनों में दमयन्ती के रंग रूप में भेद आ गया। परन्तु पति के वियोग से वह मन ही मन कुढ़ती रहती थी।

जब भीम ने अपनी बेटी का हाल सुना, उसने आदमी भेजकर उसको विदर्भ नगरी में बुला लिया, और यहाँ उसके बच्चे भी मँगवा लिये। यद्यपि पिता के घर में लड़को को पाकर वह कुछ प्रसन्न हुई, परन्तु नल के विरह से पीड़ित रहती थी। यहाँ से उसने अनेक देशों में दूतों को भेजा जो कि उसका पता लगावें।

अब नल का वृतांत सुनिये। दमयन्ती से अलग होने पर यह बहुत दिनो तक गहवर वन में घूमता फिरता रहा और अनेक प्रकार की आपत्तियें जो उसके ऊपर पड़ती रही, सब बेचारे ने सहार ली।

निदान इसी तरह घूमता फिरता वह अयोध्या नगरी में पहुँचा जो उस समय हिन्दुस्तान के बड़े शहरो में मुख्य थी। नल सारथी-पन और अश्व-विद्या मे बड़ा चतुर था, यहाँ उसने वेष बदल कर राजा ऋतुपर्ण की नौकरी कर ली। क्योकि वह बड़ा बुद्धिमान और गुण-ग्राही और भद्र पुरुष था। ऋतुपर्ण ने उसको अपने यहाँ नौकरी का अधिकार दिया। और नल ने अयोध्या के दरबार में पासा खेलने के विषय में उन चालाकियों से लोगों को परिचित किया, जिनसे द्यूत खेलने वाले भोले भाले पुरुषो को धोखा देते हैं।

जुआ खेलना राजपूतों में हमेशा से चला आता है। यद्यपि इसमें संदेह नही कि यह बड़ा दुष्ट और बुरा प्रचार है, परन्तु मनुस्मृति आदि शास्त्रों में इसका वर्णन आता है।

दमयन्ती के दूत ने सब जगह नल को तलाश किया

परन्तु कही उसका पता न लगा। निदान जब वह अयोध्या में पहुँचा तो सारथी के कर्तव्य को सुनकर उसे संशय हुआ, कि हो न हो इस वेष मे नल छुपा हुआ है। उसने बहुत से उपाय किये कि किसी भाँति पूरा-पूरा पता लगे परन्तु नल ने अपने आप को प्रकट होने नही दिया जब दमयन्ती ने उसके वचन सुने कि नल अयोध्या में है, तो उसने मस्तिष्क से सोचकर एक अत्युत्तम उपाय निकाला। उसने अयोध्या के राजा को कहला भेजा कि "नल मर गया है, अब दमयन्ती दूसरा स्वयम्बर करने वाली है, इसलिये आपको अमुक तिथि पर आना चाहिये।" दमयन्ती ने समझा, नल इस वृतांत को सुनकर अवश्य आवेगा और अपने आपको प्रकट किये बिना नही रहेगा।

जब अयोध्या के राजा ने यह वार्ता सुनी, वह मन में बड़ा प्रसन्न हुआ, क्योकि दमयन्ती के सौन्दर्य्य ने उस पर बहुत गूढ़ प्रभाव उत्पन्न कर रक्खा था। समय बहुत थोड़ा शेष था उसने नल से प्रार्थना की—"किसी प्रकार विदर्भ देश में शीघ्र पहुँचा दो।" नल ने दमयन्ती के स्वयम्बर की ख़बर सुनी उसकी दृष्टि में संसार अँधेरा सा हो गया। क्योंकि उसकी आशा का यही एक आश्रम था, जिसमें कुछ प्रकाश की झलक शेष थी। उसने समझा था कि छाया अपने तन से अलग नही होती, परन्तु इस ख़बर के सुनते ही उसकी वाणी से यह शोकमय वचन निकले कि—"किसी का कब बुरे दिन में कोई साथ देता है, अँधेरी रात मे छाया भी पुरुष से दूर होती है। दमयन्ती क्या जाने विक्षिप्त हो गई। कृतघ्नता स्त्रियो का स्वभाव है। मैंने भी तो उसके साथ बड़ा

अन्याय किया है। सम्भव है कि यह मेरे अपराध का उचित दण्ड हो। परन्तु नही दमयन्ती को फिर भी ऐसा नही करना चाहिये था।"

इस तरह राजा नल अपने मन में चिरकाल तक सोचता विचारता रहा और कभी दमयन्ती को और कभी अपने को दोष लगाता रहा। दूसरे दिन सूर्य के निकलते ही नल ने अयोध्या के महाराजा को रथ पर बैठाया और हृदय में संतोष धारकर उसी ओर चल दिया। दमयन्ती छत पर बैठी हुई प्रतिदिन उसके आने की प्रतीक्षा किया करती थी। एक दिन उसने घोड़े के आने की खबर सुनी और समझा— आज प्राण पति आवेंगे और मुझे उनका दर्शन मिलेगा।"

केवल दमयन्ती की माता को इस बात का पता था, भीम को भी इस स्वयम्बर के वास्तविक अभिप्राय का पता नही था जब अयोध्या का राजा उसके यहाँ पहुँचा, उसको बड़ा आश्चर्य हुआ और अवध-नरेश भी चकित हुआ। क्योंकि वहाँ स्वयम्बर का कोई भी सामान दिखाई नही देता था। हाँ भारतीय व्यवहार की मर्य्यादानुसार दोनो में से किसी ने भी असल वृतान्त के विषय में प्रश्न नही किया। तथापि अवध नरेश का भीम ने आतिथ्य स्वीकार किया। दमयन्ती का यह ख्याल नही था कि नल इस स्वयम्बर के सुनने से दुःखी होगा। क्योंकि यह एक उपाय था जिससे नल अपने आपको प्रकट करता।

परन्तु उसका विचार ठीक नही था। जब उसने नल को चुप चाप ही देखा तो वह मन में चिंतातुर और दुखी हुई। उसने चतुर दासियों को नियत किया कि उसकी चेष्टा की क्षण-क्षण में खबर पहुँचाई जावे, जिससे विदित हो कि यह

पुरुष नल है या नहीं। यह दासियाँ कभी कभी नल से इधर उधर की बातें किया करती थी। एक दिन एक दासी ने नल की कृतघ्नता का वृतांत सुनाया और इस तरह नल की बेपरवाही और असावधानी की बात करके पूछा—"क्या कभी तुम ने ऐसा पुरुष देखा है?" सारथी ने कुछ उत्तर नही दिया वरंच वृतांत के विषय में बहुत मनोहर बाते प्रकट की।

दमयन्ती ने इन कथाओ पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया उसने दासियो से कहा—"मेरे लड़को को ले जाकर रथवान को दिखाओ और उनके गुण वर्णन करो।" रानी ने सोचा यदि यह सारथी वास्तव में नल है, तो लड़को को देखकर उसका हृदय आर्द्र होगा और वह फिर अपने आपको न छुपा सकेगा और ऐसा ही हुआ। जब दासी राजपुत्रों को नल के पास ले गई, उसने उनको गोद में ले लिया और पहँचान कर रोने लगा। फिर धैर्य्य धार करके दासी की ओर देखकर कहने लगा—"इन लड़को को देख मुझे अपने बच्चे स्मरण आ गये हैं, जिनसे मैं चिरकाल से अलग हुआ हूँ। इनको ले जाओ क्योकि मुझे अपने निज पुत्रों का स्मरण आता है।

दासी ने सारा वृतांत दमयन्ती से जाकर कहा। अब रानी को निश्चय हो गया कि यह मेरा ही स्वामी और प्राणपति है। इसने अपनी माता से आज्ञा लेकर नल से मिलना चाहा। परन्तु ईर्षा की अग्नि से झुलसा हुआ नल अब भी अपने आपको प्रकट करना नहीं चाहता था। जब दमयन्ती ने आँखों से आँसू बहाकर कहा कि स्वयम्बर के बहाने से उसकी तलाश का प्रयोजन था, तब नल अपने धैर्य्य को सँभाल न सका और दोनों स्त्री-भर्ता गले मिलकर रोये और अपनी-अपनी आपत्तियों का वृतांत सुनाया, अयोध्या का

राजा नल के वृतांत को जानकर प्रसन्न हुआ। चिरकाल तक नल वा दमयन्ती विदर्भ नगरी मे रहे। फिर सेना लेकर निषध देश की ओर चले। उसके साथ सोलह हाथी, पचास घोड़े और छ सौ प्यादे थे। जब वह अपने महल में पहुँचे, पुष्कर वहाँ था। नल ने उससे कहा—"आओ, आज फिर पाँसा खेलें, क्योंकि मेरे पास अब धन है।" चूंकि अयोध्या में जुआरियो के हथकंडे उसने सीख लिये थे, अतः इस बार पुष्कर को खेल मे उसने हरा दिया। और सिंहासनादि राज्य-सहित सब कुछ फिर वापस ले लिया।

दमयन्ती ने नल से कहा कि—"पुष्कर पर कुछ कठोरता न कीजिये, क्योंकि यह आपद् वास्तव में अपनी भूल और अपने कर्म का फल था।।" नल राजा ने उसको जागीर देकर अपने महल से बिदा किया। दमयन्ती और नल चिरकाल तक जीवित रहे और उनकी शेष आयु आनन्द से व्यतीत हुई। उनके पोते और परपोते हुए, और पुरुष के जितने आनन्द के दिन होते है, सब सुख नल के घर में थे। प्रजा भी नल राजा से प्रसन्न थी। जिस तरह इनके दिन पलटे, परमात्मा करे हम सब की आपत्तियाँ खुशी और प्रसन्नता से बदले।

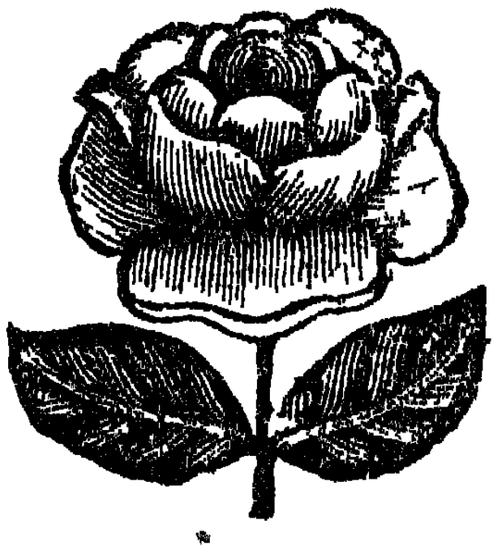

१४--अर्गल की रानी

अर्गल की रानी ने आपत्ति के समय अपने आप को नवाब अवध की सेना के बीच पाकर खेत काटने-वाले राजपुत किसानो को अपनी सहायता के लिये ऊँची आवाज़ से बुलाया और यह लोग वीरांगना स्त्री की रक्षा करना धर्म समझ कर नवाब की सेना पर बिजुली की तरह गिरे और रानी को पकड़े जाने से बचा लिया। इसकी कथा इस तरह है—सन् १२५० में अर्गल का राजा हिदू था, जिसने देहली के बादशाह को कर देने से मुख मोड़ लिया था। उसका नाम गौतम था और इस वृतांत की मूल कारण उसकी रानी थी। हमको इस श्रेष्ठ रानी का जीवन-चरित्र विदित नहीं है, किंतु इसके विवाह के साथ जो बात पेश आई उसने इसके नाम को भुवन-विख्यात कर दिया।

उस समय देहली के सिंहासन पर नसीरुद्दीन बैठा था। यह सुन्दर था परंतु मन्द-भाग्य रज़िया बेग़म का भाई था। बादशाह था तो बड़ा धार्मिक और पवित्र, परन्तु इसके स्वभाव में एक विशेष प्रकार का पता चलता है। जहाँ तक उसके प्राइवेट जीवन का पता चलता है, वह बिलकुल साधुओं की तरह अपना जीवन व्यतीत करता था और ख़र्च के लिए राज्य-कोष से कुछ नही लेता था। किताबों की नक़ल करता और उसको क़ीमत से अपना निर्वाह करता था। भोजन नितान्त सादे करता था। उसकी बेग़म अपने हाथ से खाना पकाया करती थी और बादशाह ने बेग़म की

सेवा के लिए एक दासी भी नियत नही कर रक्खी थी। उसके केवल एक स्त्री ही थी, और मुसलमान बादशाहों की तरह रनवास का कोई प्रबन्ध नही था। जब गौतम के विरोध की नसीरुद्दीन को ख़बर मिली, तो उसने सूबेदार अवध से गौतम को उचित दण्ड देने के लिए आज्ञा की। सूबेदार ने सब प्रकार से उसका सामना किया, पर उससे कुछ बन न पड़ा। शाही सेना का महान् पराजय हुआ और दस हज़ार आदमी मारे गये। बाक़ी सेना भाग गई और राजा भी अपने महल की ओर चले आये। इस जय की खुशी का उत्सव करने के लिये राजा ने आज्ञा दी, जिसमें छोटे बड़े सब बुलाये गये थे। राजा गौतम बुद्धिमान् महाप्रतापी और धर्मपाल था।

गौतम नृप सम को धनुधारी।
धीर वीर निज कुल हितकारी॥
जासु नाम सुनि डरपहिं वीरा।
समर-भयंकर अति रणधीरा॥
एक बार राठौर सँग, कीन घोर संग्राम।
क़ायर भाजे क्षेत्र से, फिर न लीन रण नाम॥
भयउ गर्व बश कहा न माना।
भागा छोड़ि खेत चौहाना॥
यह संग्राम जीत गंभीरा।
जहँ तहँ मुदित फिरहिं रणधीरा॥

कई दिन तक निरन्तर उत्सव होता रहा। विशेष करके महारानी बहुत प्रसन्न थी और वह अपने हाथ से स्वयं

सिपाहियों के लिए पक्वान्न बनाकर भेजती थी। इसी तरह कई सप्ताह तक अर्गल में राजा प्रजा सब खुशी-खुशी से उत्सव मनाते रहे परन्तु शोक—

जहाँ सुक्ख तहँ दुःख है, यह सम्मति निरधार।
जहाँ पुण्य तहँ पाप है, देखहु हृदय विचार॥

लौकिक आनन्द की काई दशा ऐसी नही है जिसमें शोक मिला हुआ न हो। गुलाब में काँटा और मद में खुमार है। जिस दशा को हम भूल से सर्व सुखदायक कहते है, वह भी शोक से शून्य नहीं है।

शादी कोई ख़ाली नहीं ग़म से नज़र आई।
देखा है कि जब खूब हँसे आँख भर आई॥

रानी अपनी सखियों के बीच इस तरह बैठी हुई थी जैसे तारमण्डल के बीच चाँद। उनकी दृष्टि आकाश की ओर थी। रात का समय था। चाँदनी खूब खिली हुई थी। इतने में चन्द्र-ग्रहण के लक्षण दिखाई देने लगे। संसार के क्रूरकुसुत ने कुछ और ही अर्थ प्रकट कर रक्खा है। यह कोई नई बात नही है कि मूर्खता और अविद्या के कारण स्वार्थी पुजारियो की बातें सुनकर लोग उनको पूज्य-पद देते हैं और उन्हे धर्म-व्यवस्था समझ कर किए जाते हैं। अव्यवस्थित चित्त मूर्ख लोग दम्भी लोगों की माया को आकाश-वाणी समझते हैं। जिस समय की यह वार्ता है उस समय भी लोग आज कल की भाँति समझते थे कि सूर्य और चाँद ने किसी समय में कर्जा लिया था! ग़रीबी से दे नही सके। महाराज राहु-केतु जब इनके ऊपर हमला करते है, तब ग्रहण होते हैं। और उस समय

जो कुछ दान दिया जाता है वह उनके मोक्ष का कारण होता है। वाह रे मनुष्य ! वाह तेरा भोलापन ! इस मिथ्या विश्वास का भी कही ठिकाना है ?

रानी ने चाँद पर कर्ज़ा माँगने वाले के अनुचित व्यवहार को देखकर कहा—"मैं तो गंगा-स्नान करने जाऊँगी। इस समय पर गंगा के स्नान से बड़ा पुण्य होता है, सारे पाप कट जाते हैं, धन सम्पति की वृद्धि होती है, पति वा पुत्रों की आयु बढ़ती है। यदि ऐसा न किया जावेगा, तो हमारे राज्य में विघ्न पड़ेगा। मैं तो अवश्य ही जाऊँगी, चाहे कुछ ही क्यों न हो जावे। यद्यपि दरिया पर मुसलमानो की सेना खड़ी है, परन्तु मुझे राजा वा उसकी राज्य वृद्धि का ख्याल है।" सहेलियो ने समझाया कि—"यह समय ठीक नही है।" परन्तु रानी ने एक भी नही सुनी। उसने साड़ी पहन ली और दो स्त्रियो को साथ लेकर दरिया की ओर प्रस्थान किया। दरिया राजधानी से कई मील के अन्तर पर था। अन्तर का हिसाब लगाया कि यदि रात के बारह बजे महल से चलूँगी, तो प्रात. काल गंगा पर पहुँच जाऊँगी और फिर दूसरे दिन बारह बजे के पहिले घर लौट आऊँगी।

चाँद दिखाई देने से रह गया था, आकाश में तारे जगमगा रहे थे, परन्तु ग्रहण के कारण चारो ओर उदासी और भयानकता छाई थी। रानी ने अपनी सखियों को साथ लेकर चोर-महल के मार्ग से दरिया की ओर प्रस्थान किया। कोई पुरुष साथ नही था। उसने किसी की सहायता की आवश्यकता न समझी। मन में किसी भाँति का भय तक नहीं आने दिया। राजा और उसके दरबारी उत्सव मना रहे हैं; स्त्रियाँ महल से निकलती हैं। मन्दिर और तालाब आदि से गुज़रती हुई

अपनी यात्रा पर जा रही हैं। धर्म प्रेम ने उनकी गति में विलक्षण उत्तेजना कर दी थी। मार्ग में खेत, गाँव, मैंदान सब पड़ते है। यात्री बराबर चले जा रहे हैं। थोड़ी देर के लिये भी आराम नही लेते। प्रातःकाल के लक्षण प्रगट होने लगे। पूर्व दिशा से उदय होता हुआ भानु अपने प्रकाश और सुनहरी किरणों से संसार को प्रकाशित कर रहा है। आहा! कैसी अच्छी शोभा है। उदय होते हुए भानु की सुहावनी ज्योति देखने-योग्य है। स्त्रियाँ दरिया के तीर पर पहुँची जहाँ पवित्र गंगा की लहरें सुन्दर बेग से बह रही थी। रानी का हृदय उसकी महिमा देखकर प्रसन्न हुआ। वह मन ही मन में खुशी है। इतने में एक साधु पूर्वी ढंग से गीत गाता हुआ उधर से चला आता था—

गंगा तेरी लहर हमारे मन भाई।
वन पर्वत और बाग बगीचा ऊसर घाटी खाँई।
जीवन दान किया तैंने सबको, महिमा सब जग छाई॥
गंगा तेरी लहर हमारे मन भाई॥ १॥
अंशुमान रघु सगर दधीची, तेरी आस लगाई।
भागीरथ अद्भुत काम कियो है गंग तरंग बुलाई॥
गंगा तेरी लहर हमारे मन भाई॥ २॥

प्रातःकाल के समय भैरवी राग का बड़ा असर होता है। सुनने वालों का हृदय भड़क उठा। रानी अतीव प्रसन्न हो गई। नियमानुकूल ब्राह्मणों को दान दिया और आनन्द से गंगाजी में स्नान किया। यहाँ तक रानी ने अपना काम निर्विघ्नता से

किया। यद्यपि वह छुपकर आई थी परन्तु महारानी की गंगा तक आने की बात ऐसी न थी जो छुपी रह सकती। उसकी दान-वीरता को देखकर लोगो ने समझा—हो न हो यह अर्गल की रानी है। होते होते यह खबर अवध के सूबेदार के कानो तक पहुँची, जो हारकर बदला लेने की फ़िकर में लग रहा था। उसने अपने दूतों से अच्छी तरह सुन लिया था कि वह अर्गल की महारानी है। वह इस ख़बर से प्रफुल्लित हो गया। उसने समझा रानी सुख से पकड़ी जावेगी और इस तरह राजा को उसके घमंड का स्वाद चखाया जावेगा। दीन और अनभिज्ञ रानी पूजा-पाठ के अनन्तर घर की ओर चली। कठिनता से वह दो तीन मील आगे बढ़ी होगी कि उसके चारो ओर हज़ारो मुसलमान लोगों की भीड़ नज़र आई और उसी समय उस समुदाय के अधिपति ने आज्ञा दी—

धरि बाँधहु यहि तीय कहँ, कहुँ नाहिं जावे भाज।
देखहुँ यहि कर वीरता, मैं निज नैनन आज॥

रानी इन वचनो को सुनकर दंग रह गई, काटो तो शरीर मँ रुधिर नही। चेहरे का रंग उड़ गया। परन्तु वह राजपूतानी थी, छण मात्र के अनन्तर वह निर्भयता से मुसलमानो के सन्मुख खड़ी हो गई। उच्च स्वर से कहने लगी—"मुसलमानो! तुम्हारे लिये कैसी लज्जा की बात है कि एक दीन स्त्री को दुःख देने के लिये तुम यहाँ खड़े हो। क्या तुम तीन स्त्रियों के साथ युद्ध करना चाहते हो? याद रक्खो! तुम अवध के हाकिम के सिपाही हो, तुम में मनुष्यों जैसे लक्षण होने चाहियें। उचित यह है कि तुम मेरा मार्ग छोड़ दो। यदि वीरता देखनी है, तो कुल अर्गल की सेना से मुक़ाबला करो।"

रानी की बात सुनकर मुसलमानो का सर्दार सहम गया। परन्तु फिर उसने कहा— 'कि नही नही, तुझे पकड़ कर हम हाकिम सूबा के पास ले जावेंगे।" यह वचन सरदार के मुख से कठिनता से निकले होगे कि रानी ने कमर से खंजर निकाल कर उसके सिर को तन से अलग कर दिया। बाकी मुसलमान आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगे। वह समझते थ कि रानी भाग कर नही जा सकती। तीन स्त्रियें इतने समूह का क्या सामना कर सकेंगी? वे उनको सुगम शिकार समझ कर आखेट में थे कि बिना युद्ध के जीते हा उनको पकड़ लें। रानी इस अभिप्राय को जानती थी। जिस जगह वह खड़ी थी, दैवात् वहाँ पर ऊँचा टीला था। उसने चारो ओर नज़र घुमा कर देखा। पास एक राजपूतो का झुण्ड खेत काटने में लगा हुआ था। उसके सरदार दो भाई अभयचन्द और निर्भयचन्द वैश्य-जाति के क्षत्री थे। रानी ने उच्च स्वर से उनसे कहा—"वीरों! जल्दी आओ। आर्य्य लोग स्त्री, बालक और गौ की प्रार्थना पर अपने प्राण दे देते है। मैं अर्गल की रानी हूँ मुसलमान बलात्कार पकड़ने की इच्छा कर रहे हैं। यदि तुमको अपनी माँ, बहिन प्रिय है या स्त्री-जाति की प्रतिष्ठा का विचार है या अपनी पुत्री से प्रेम है, तो शीघ्र ही मेरी सहायता करो। मैं इस उपकार के बदले अपनी लड़की तुमको ब्याह दूंगी।" खेत वालों ने इसको श्रवण किया, परन्तु आशय अच्छी तरह वह नहा समझ सके। मुसलमान लोग रानी के इस वचन से भयभीत हा गये। दो चार आगे बढ़े। सहेलियो को चमकती हुई तलवारों ने वही उनका सिर उड़ा दिया। रानी ने अपनी तलवार को आकाश में चमकाते हुए खेतवालों को ललकारा—"क्या तुम में कोई राजपूत नही है जो स्त्री की

सहायता पर आवे ? क्या क्षत्रियो से संसार खाली हो गया ? क्या जातीय लज्जा जाती रही ? पुरुषो ! मैं तुमको शपथ देती हूं। आओ और अपनी रानी के सतीत्व को बचाओ।"

रानी के यह उत्तेजक वचन खाली नही गये। निर्भयचन्द और अभयचन्द बिजुली की तरह झपटे और अपनी कटारों से भीड़ को चीरते हुए रानी के पास आ गये। उनके साथियो ने अपने सरदारो का अनुगमन किया। राजपूतो ने तीनो स्त्रियो को बीच में कर लिया और लड़ते हुए अर्गल के फाटक तक जा पहुँचे।

इस प्रकार के प्राण न्योछावरता के वृतांत इतिहासो में कम मिलते है। या तो जसवन्तसिंह की रानी देहली के गली कूंचों में लड़ती हुई अपने बच्चे को साफ़ बचा ले गई थी, या इस समय पर रानी अर्गल ने पकड़े जाने से अपने आप को बड़ी वीरता से बचा लिया था। कोसो तक बराबर लड़ाई रही और लड़ाके राजपूतो ने एक-एक फुट धरती अपने गले कटा-कटा कर तै की थी। रानी की आवाज बीच बीच में सुनाई देती थी। इसकी तलवार आकाश में चमकती हुई दिखाई देती थी और उसकी बात-बात पर कई पुरुष बड़े उमंग के साथ उछल-उछल कर शत्रुओं का विनाश कर रहे थे। इसके वचनो में जादू था। उसकी निज की वीरता बलि ढाती थी। मुसलमान लोग अति विस्मित थे, परन्तु इनको आशा थी यह कहाँ तक लड़ेंगे। दस बीस शत्रुओ को मारकर एक राजपूत मरता था। निर्भय स्वर्ग-धाम को चला गया, एक अभय बाकी रह गया, वह बराबर स्त्रियों को धैर्य्य देते हुए लड़ रहा था। यह समीप था कि उसकी मृत्यु रानी की आशाओं को समाप्त कर दे। इतने में

अर्गल की सेना सहायता पर आ पहुँची। अर्गल में यह जन-श्रुति उड़ गई थी कि रानी गंगा-स्नान के समय पर मुसलमानो में पकड़ी गई। वीर गौतम वीर सिपाहियों को साथ लिये हुए समय पर आ पहुँचा और उस समय अवध की जो दशा हुई, लिखने में नही आ सकती। लाचार मुसलमान भाग खड़े हुए। गौतम रानी को राजी खुशी पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसकी इच्छा थी कि मुसलमानो का पीछा करें। परंतु रानी ने कहा—"हिजड़ो का पीछा करना व्यर्थ है। इनको पूरा दण्ड मिल गया।" सब लोग राज-महल की ओर आये। रानी ने आँसू भरी आँखों से अभयचन्द का हाथ पकड़ कर राजा से कहा—"यह मेरा पुत्र है, जिसने अपनी माता को आपत्ति से बचाने के लिए प्राण तक देने से भय नही किया।" गौतम ने अभय को गले से लगाया।

शहर में इस रिपु-जय की प्रसन्नता से फिर विजय के बाजे बजने लगे। सब लोग प्रसन्न होकर अभय और रानी की वीरता की प्रशंसा करते थे। लोग अभिमान से कहा करते थे—

लश्कर है जरी क़ौम से लश्कर से हमारे।
थर्राता है रुस्तम का जिगर डर से हमारे॥
शेर आँख चुरा जाता है त्योरी से हमारे।
निकला है वीरता का चलन घर से हमारे॥
सया नहीं होते हैं यह पेशा है हमारा।
थे राम लक्ष्मण जिसमें वह है वंश हमारा॥

अभय को पारितोषिक दिया गया। दूर-दूर इसकी कृतज्ञता की स्तुति होने लगी। यद्यपि वह नीची जाति में उत्पन्न हुआ था, तथापि रानी ने राजा की सम्मति से अपनी लड़की

उससे ब्याह दी और गंगा के पास का वह भाग जहाँ लड़ाई हुई थी, उसको दहेज में दे दिया। केवल वह अर्गल के राजा का जामात ही नही हुआ वरंच गौतम ने उसको राव की पदवी भी दी। हर एक के मुख में उसकी इस वीरता की बात थी। कई पीढ़ियो तक राजपूत अभय और निर्भय के गीत गाते रहे थे। सब को यही वृतान्त सुनाते थे—

कंपहि वीर जासु सुनि नामा।
देखहु चलि सोई तीय ललामा॥
रैन दिवस जहँ तहँ नर नारी।
गावहिं गीत मोद अति भारी॥

उस भीरु सूबेदार की क्या दशा हुई। जिस समय शाह नसीरुद्दीन को खबर मिली, उस ने सूबेदार को दुर्वचन कहे और सब के सामने अप्रतिष्ठित किया। शत्रु मित्र सब इसको धिक्कारते थे। एक स्त्री के विरुद्ध व्यर्थ लड़ाई करके अपनी प्रतिष्ठा को संदेह में डाल दिया। वृद्धावस्था में जब कोई अर्गल का वृतांत उसको सुनाता, सूबेदार लज्जा से सिर नीचे झुका लेता और नेत्रों स आँसू जारी हो जाते क्योंकि उस समय में पुरुष स्त्री के सन्मुख नही आता था।

यह अर्गल की रानी का संक्षिप्त चरित्र है।

१५—सीता और उसका प्रेम

[रामायण का एक भयानक वृतान्त।]

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस काट भू में धरे, तब बैठे घर माहिं॥ १

प्रेम पियाला जो पिये, सीस दक्षिणा देय।
लोभी सीस न दे सक, नाम प्रेम का लेय॥ २
प्रेम प्रेम सब कोइ कहे, प्रेम न जाने कोय।
आठ पहर भी ना रहै, प्रेम कहावे सोय॥ ३
पिय रस पिया जो जानिये, उतरे नहीं खुमार।
नाम अमल माता रहे, पिये अमी रस सार॥ ४
पीया चाहे प्रेम रस, राखा चाहे मान।
एक म्यान में दो खड्ग, देखा सुना न कान॥ ५
नैनों की कर कोठरी, पुतली पलँग बिछाय।
पलकों की चिक डालकर, पियको लिया रिझाय॥ ६
जब मैं था तब हरि नहीं, जब मैं हूं हरि नाहिं।
प्रेम गली अति सांकरी, ता में दो न समाहिं॥ ७

—कबीरदास जी।

संसार मे सब से अधिक बलिष्ठ सामर्थ्य जो पुरुष को सचचाई के साँचे मे ढालकर उसको निर्बलता वा समस्त दोषों को और कुत्सित विचारो को जलाकर भस्म कर देती है, वह प्रेम है 'प्रेम' यह बड़ा विस्तृत शब्द है। इसको समझना बड़ी भूल या अज्ञानता है। इसका प्रभाव प्रत्येक पुरुष पर विद्यमान है। यह वह श्लाघनीय वा बलवान बात है कि फिर वहाँ और कोई ध्यान ही नहीं रहता। प्रेम को थोड़ासा अपना प्रकाश दिखाने दो, कामादि दोषान्धकार उसी समय अपना विस्तार बाँध लेते हैं। प्रेम-मद विलक्षण ही

होता है। इसका मद कभी नही उतरता। यह मन के वेगों को एकत्रित करके प्रीतम के चरणों में झुका देता है। हे प्रकाश के प्यारे पतंग ! हम तेरे प्रेम को ईर्षा की दृष्टि से देखते हैं। क्या तू उसका थोड़ा-सा हिस्सा हम को भी दे सकता है? दीपक पर प्राण न्योछावर करने वाला पतंग, मन्द-मन्द हँसता हुआ और प्रेम में मग्न, आग की ओर चलने के लिये लपकता हुआ जा रहा है।

पतंग हम को लालची मधु मक्खी की उपमा देती है और यह सच भी है। जिनको संसार का विचार और जिनको धन का लोभ है, वह प्रेम के अधिकारी नही हैं, वह इस धन के भागी नही बनाये गये।

प्रेम कहता है कि अपनी भयंकर आकृत को छोड़ दे। यदि सत्संगति अपना प्रभाव रखती है, यदि खरबूजे को देख कर खरबूजा रंग पकड़ता है, तो तू भी पतंग की तरह अपने आप को प्रीतम पर न्योछावर कर दे प्रीतम के सिवाय और किसी का लोभ मत कर। उसी के विचार को अपने मन में स्थान दे। इसी विचार में दिन रात लगा रह, उसके सिवाय और किसी को मत देख। उसके श्रेष्ठ विचार और बुद्धिमत्ता के अभ्यास को उत्पन्न करके आनन्द में मग्न होकर प्रेम के विषय में कह उठ—

लाली अपने लाल की, जित देखे तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

यदि लोहा आग की संगति से आग का काम देने लगता है और अग्नि के समान लाल अंगारा बन जाता है, तो तू भी अपने सामर्थ के अनुसार प्रीतम के गुणों से गुणवान हो

जावेगी। यही प्रेम का उत्तम उद्देश्य है, वास्तविक कर्तव्य है, और सच्चा सम्बन्ध है। यदि विद्यार्थी पुस्तक को बगल में दबाये हुए हर वक्त उसके विचार में लीन नही होता तो वह विद्या का पूरा अभिलाषी नही है। आँखो से दुरबीन लगाये हुए तारा मण्डल के देखने मे ज्योतिषी अपने आपको भूल जाता है। प्रेम का मारा हुआ प्रीतम के सिवाय किसी और की आकांक्षा नही रखता। इश्क आशक को सिवाय अपनी धुन के और सब की ओर से अन्धा बना देता है और उसको निज लक्ष-रूप प्रीतम के सिवा और कुछ नही सूझता। इस की लीला निराली है और उसका तमाशा भी अद्भुत है।

इस बात के परिणाम में कि प्रेम का सामर्थ्य कैसा बलवान् है, आज हम आपको श्रीराम और सीताजी का सम्बाद सुनाते हैं, जो उन में वन जाने से पहिले हुआ था।

राम बिदा होने के अभिप्राय से सीताजी के महल में आये। सीता ने अभी तक रामचन्द्रजी के वन-वास का समाचार नही सुना था। वह प्रसन्न थी कि आज रामजी को राज्य-तिलक होगा। जब वह महल में आये, तो उसने हँसते हुए उनका स्वागत किया, परन्तु पति के मस्तक में तेउरी देखकर उसको बड़ा आश्चर्य हुआ। कोई न कोई शोक की बात अवश्य है, नही तो राम कभी ऐसे उदास नही देखे गये। इसने हाथ जोड़कर कहा—"भगवन्! आप क्यों ऐसे उदासीन हैं। आज आपके राज-तिलक का दिन है। ऐसे शुभ समय पर लोग प्रसन्न होते हैं। क्या कारण है आपके साथ न कोई ब्राह्मण है, न कोई और पुरुष है। न किसी के हाथ चमर है, न क्षत्र है। आपका चेहरा क्यों उदास हुआ है? मैंने पहिले कभी आपको ऐसा न देखा

था ?" रामचन्द्रजी न उत्तर दिया—"सीता ! बहुत समय हुआ जब मेरे पिता ने माता कैकेयी को दो वर दिये थे। कैकेयी ने अब जाकर उनसे ववन पूरा करा लिया है मुझे चौदह वर्ष दण्डक वन मे रहना होगा और भरत राज्य करेंगे। मैं प्रवासी बन कर वन को जाऊँगा। तुझको देखन और कुछ कहने के लिये यहाँ आया हूँ। तू भरत के सन्मुख मेरी श्लाघा कभी न करना और अपने आचार व्यवहार को इस तरह बना लेना कि जिसमें वह अप्रसन्न न हो। मैं तो अब पिता की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए वन को जाता हूँ, वहाँ तपस्वियों के बीच रहूँगा। तू धर्म का पालन करती हुई प्रति दिन मेरे पिता दशरथ और मेरी माताओ की आज्ञा में रहना। मेरी माता कौशिल्या वृद्धा है। उसकी बराबर ख़बर लेती रहना। भरत और शत्रुघ्न तेरे पुत्र वा भाई के सामान है। वह मुझको अपने प्राणो स भी अधिक प्यारे है। हे देवी ! भरत को कभी अप्रसन्न न करना। वह अब इस राज्य के मालिक और वंश के शिरोमणि है।

राजा लोग प्राय. लड़कों से अप्रसन्न हो जाते हैं और दूसरे को अपनी कृपा का पात्र समझने लगते है. इसलिए तू उनकी प्रसन्नता का सदैव यत्न करती रहना और जब तक मैं वन से लौटकर न आऊँ, यहाँ धर्म में आनन्द के साथ अपने दिन काटती रहना।"

सीता महारानी रामचन्द्र की बात सुनकर चकित हो कर बोली—"भगवन् ! यह स्वप्न है या विचार है ? यह वचन आपकी वाणी से किस तरह निकले ? क्या आप अपनी सीता को स्वार्थी, नीच और मूर्ख समझते हो ? आपके वचन सुनकर मुझे अपने आप हँसी आती है। पुरुषों में सब से मुख्य

और असली सूर्य वीर के वाणी से निकले हुए ऐसे वचन शोभा नही पाते। उनको सुनना भी अनुचित है।

राम ने कहा—

राजकुमारि सिखावन सुनहू।
आन भांति जिय जनि कछु गुनहू॥
आपन मोर नीक जो चहहू।
बचन हमार मानि घर रहहू॥
आयसु मोर सासु सेवकाई।
सब बिधि भामिन भवन भलाई॥
यहि ते अधिक धर्म नहिं दूजा।
सादर सासु ससुर पद पूजा॥
जब जब मातु करहिं सुधि मोरी।
होइहि प्रेम विकल मति भोरी॥
तब तब तुम कहि कथा पुरानी।
सुन्दरि समुझायहु मृदु बानी॥
कहौं सुभाव शपथ शत मोहीं।
सुमुखि मातृ हित राखौं तोहीं॥
गुरु श्रुति सम्मत धर्म-फल, पाइय बिनहिं कलेश।
हठ वश सब संकट सहे, गालव नहुष नरेश॥
मैं पुनि करि प्रमाण पितु बानी।
वेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी॥

दिवस जात नहिं लागहिं बारा।
सुन्दरि सिखवन सुनहु हमारा॥
जो हठ करहु प्रेम बश बामा।
तौ तुम दुख पावहु परिणामा॥
कानन कठिन भयंकर भारी।
घोर घाम हिम वारि बयारी॥
कुश कंटक मग कंकर नाना।
चलब पयादेहि बिनु पदत्राना॥
चरण कमल मृदु मन्जु तुम्हारे।
मारग अगम भूमिधर भारे॥
कन्दर खोह नदी नद नारे।
अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु बाघ वृक केहरी नागा।
करहिं नाद सुनि धीरज भागा॥

भूमि शयन बलकल बसन, अशन कन्द फल मूल।
नेकि सदा सब दिन मिलहिं, समय समय अनुकूल॥

नर अहार रजनीचर करहीं।
कपट भेष बिधि कोटिक धरहीं॥
लागै अति पहाड़ कर पानी।
विपिन-विपति नहिं जाय बखानी॥

व्याल कराल विहँग बन घोरा ।
निशिचर निकर नारि नर चोरा ॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आये ।
मृगलोचनि तुम भीरु सुभाये ॥
हन्सगमनि तुम नहिं बन योगू ।
सुनि अपयश देहहिं मोहिं लोगू ॥
मानस सलिल सुधा प्रतिपाली ।
जियइ कि लवण पयोधि मराली ॥
नव रसाल वन विहरन-शीला ।
सोह कि कोकिल विपिन करीला ॥
रहहु भवन अस हृदय विचारी ।
चन्द्रवदनि दुख कानन भारी ॥
सहज सुहृद् गुरु स्वामि सिख, जो न करै हित मानि ।
सो पछिताय अघाय उर, अवशि होय हित हानि ॥
सुनि मृदु वचन मनोहर पिय के ।
लोचन-नलिन भरे जल सिय के ॥
शीतल सिख दाहक भई कैसे ।
चकइहि शरद चाँदनी जैसे ॥
उतर न आव विकल वैदेही ।
तजन चहत मोहिं परम सनेही ॥
परवश रोकि विलोचन बारी ।

धरि धरिज उर अवनिकुमारी ॥
लागि सासु पद कह करजोरी ।
क्षमिय देवि बाड़ि अविनय मोरी ॥
दीन्ह प्राणपति मोहिं सिख सोई ।
जेहि विधि मोर परम हित होई ॥
मैं पुनि समुझि दीख मन माहीं ।
पिय-वियोग सम दुख जग नाहीं ॥

प्राणनाथ करुणायतन, सुन्दर सुखद सुजान ।
तुम विन रघुकुल कुमुदविधु, सुरपुर नरक समान ॥

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई ।
प्रिय परिवार सुहृद् समुदाई ॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते ।
पिय बिनु तियहिं तरनि ते ताते ॥
तनु धनु धाम धरणि पुर राजू ।
पति-विहीन सब शोक-समाजू ॥
भोग रोग-मम भूषण भारू ।
यम-यातना-सरिस ससारू ॥
प्राणनाथ तुम बिनु जग माहीं ।
मो कहँ सुखद कतहुँ कोउ नाहीं ॥
जिय बिनु देह नदी बिनु वारी ।
तैसेहि नाथ पुरुष बिनु नारी ॥

नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे ।
शरद-विमल-विधु-वदन निहारे ॥
खग मृग परिजन नगर वन, बलकल विमल दुकूल ।
नाथ साथ सुर-सदन-सम, पर्णशाला सुख मूल ॥
वन-देवी वन-देव उदारा ।
करिहैं सास ससुर सम प्यारा ॥
कुश किशलय साथरी सुहाई ।
प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई ॥
कंद मूल फल अमिय अहारू ।
अवध सौध शत सरिस पहारू ॥
क्षण-क्षण प्रभु-पदकमल विलोकी ।
रहिहौं मुदित दिवस जिमि कोकी॥
वन दुख नाथ कहेउ बहुतेरे ।
भय विषाद परिताप घनेरे ॥
प्रभु-वियोग लवलेश समाना ।
सकल करब मिलि कृपानिधाना॥
अस जिय जानि सुजान शिरोमणि ।
लेइय संग मोहिं छाँड़िय जनि ॥
बिनती बहुत करौं का स्वामी ।
करुणामय उर अन्तर्यामी ॥
राखिय अवध जो अवधि लगि, रहय न जानिय प्रान ।

दीनबन्धु सुन्दर सुखद, शील सनेह निधान ॥

मोहिं मग चलत न होइहि हारी ।
क्षण-क्षण चरण-सरोज निहारी ॥
सबहिं भाँति पिय सेवा करिहौं ।
मारग-जनित सकल श्रम हरिहौं॥
पाँव पखारि बैठि तरु-छाहीं ।
करिहौं वायु मुदित मन माहीं ॥
श्रम कण सहित श्याम तनु देखे ।
कैंहु दुख रहइ प्राणपति पेखे ॥
समतहि तृण तरु पल्लव डासी ।
पाइ पलोटिहि सब निशि दासी ॥
बार बार मृदु मूरति जोही ।
लागहि ताप बयारि न मोही ॥
को प्रभु संग मोहिं चितवनहारा ।
सिंह-बधुहिं जिमि शशक सियारा॥
मैं सुकुमारि नाथ वन योगू ।
तुमहिं उचित तप मो कहँ भोगू ॥
ऐसेहि वचन कठोर सुनि, जो न हृदय विलगान ।
तौ प्रभु विषम वियोग दुख, सहिहैं पामर प्रान ॥

अस कहि सीय विकल भई भारी ।
वचन वियोग न सकी सँभारी ॥

देखि दशा रघुपति जिय जाना ।
हठि राखे राखहि नहिं प्राना ॥
कहेउ कृपालु भानु-कुल-नाथा ।
परिहरि शोच चलहु वन साथा ॥
नहिं विषाद कर अवसर आजू ।
वेगि करहु वन-गमन समाजू ॥

—तुलसीदासजा ।

यह सुनकर सीता के प्राणो में प्राण आये और सर्वस्व दान में लुटाकर वह राम के साथ होगई ।

वह निकले इस तरह दोनों वतन से ।
कि रुखसत हुए बुलबुल चमन से ॥

प्रेम की जय हो ! गृहस्थाश्रम के पालनेवाले भाई बहिनो ! स्त्री-पुरुष के सच्चे प्रेम के नमूने राम और सीता हैं । तुम भी उनका अनुसरण करो ।

१६–तारामती (शैव्या)

दोहा

दुख संकट के बादरा, रहे गगन में छाय ।
नाचत काल कराल शिर, कोउ नहिं होत सहाय ॥
गहरी नदी अथाह जल, नहिं कोउ खेवनहार ।
हाय दई कैसी करूँ, केहि विधि उतरूँ पार ॥

दीनानाथ दयाल चित, कृपासिंधु करतार ।
मोहिं अस अबला पतित को, खेइ लगावहु पार ॥
सोइ करो नहिं जाय प्रण, यहि जग राखो नाम ।
मैं दासी तव चरण की, बेंचि निकारहु काम ॥

रामती राजा हरिश्चन्द्र की रानी थी। इसका दूसरा नाम शैव्या था। यदि एक नाम इसके सुन्दर रूप को प्रकट करता है, तो दूसरा इस श्रेष्ठ माता के पातिव्रतत्व और असल बड़ाई तथा सद्भाव की याद दिलाता है।

हरिश्चन्द्र और तारामती यह दोनों ऐसे योग्य पुरुष थे, जिनकी योग्यता को सन्मुख रखकर लोग उच्च पदवी की प्राप्ति के लिये उनका अनुकरण करते है।

जहाँ राजा वा रानी ऐसे श्रेष्ठ धर्मात्मा है, तो उस भाग्यवान् देश का क्या कहना। ईश्वर जब किसी जाति वा देश पर प्रसन्न होता है, तब उसे न्यायकारी और प्रजा पालक राजा देता है।

राजा रानी दोनों प्रसन्न थे, परन्तु उनकी प्रसन्नता अधम प्रकृति के सदृश अधम कामो के विचार में उन्मत्त रहने वालों की सी न थी।

उनका मन दर्पण की तरह शुद्ध था। उनमें दोष तनिक भी न था। उनका जीवन शान्त वा प्रफुल्लित आत्मा का जीवन था। परन्तु शोक! यह संसार विचित्र है। इसके गुलाब में काँटा और इसके शहद में मधु-मक्खी हैं। कौन पुरुष है जिसको समय के अनुचित तमाचे खाने नहीं पड़े। राजा हो या रंक, कोई इससे बचा नही है, न बच सकता है।

काल भगवान् का चक्र सर्वदा घूमता रहता है। कभी ऊपर कभी नीचे। कभी हेमन्त कभी बसंत। कभी हर्ष कभी शोक। समय की दशा एक जैसे नही रहती। हरिश्चन्द्र और उसके सम्बन्धी भी इसमें कैसे रह सकते थे ?

हरिश्चन्द्र सत्यवादी प्रसिद्ध था। उसको अपनी प्रतिज्ञा पालन का ऐसा ध्यान था कि चाहे कुछ ही क्यो न हो जावे, परन्तु वह कभी अपनी जबान को नही पलटता था। उसके इस गुण की प्रसिद्धि ने विश्वामित्र ऋषि को उसका विरोधी बना दिया। उसने वशिष्ठ ऋषि के सामने कहा कि "मैं हरिश्चन्द्र को सत्य-पथ से गिराकर छोड़ूंगा।" और उस ऋषि ने राजा हरिश्चन्द्र को बुलाकर उससे राज्य को दान में माँग लिया। चूंकि हिन्दुओं में दान के साथ दक्षिणा देने की भी रीति है। जब राजा ने कहा कि—"अब यह राज पाट तुम्हारा है।" तब विश्वामित्र ने कहा—"बहुत अच्छा, अब इसके बराबर की सुवर्ण दक्षिणा भी दीजिये ?" कोष धन-दान के कारण विश्वामित्र का हो चुका था, अब इसका छूना अधर्म था। राजा ने कहा—"मैं एक महीने में बनारस जाकर तुमको दक्षिणा दूंगा, इतना समय स्वीकार करो।" विश्वामित्र ने कहा—"यदि तू अपनी प्रतिज्ञा से टल जावे, तो मैं दक्षिणा के लिये हठ नही करता।" परन्तु हरिश्चन्द्र ने कहा—"यह क्या बात है, मै अपने वचन पर सर्वथा दृढ़-प्रतिज्ञ रहूँगा। प्राण चाहे जावें या रहें, सूर्य चाहे पूर्व को छोड़कर पश्चिम में उदय हो और समुद्र की तरंग चाहे सुमेरु की चोटी पर उछलने लगें, परन्तु हरिश्चन्द्र अपनी बात से कभी नही बदलेगा।

चन्द्र टरे सूरज टरे, टरे जगत् व्यवहार ।
तापै दृढ हरिश्चन्द्र का, टरे न सत्य बिचार ॥"

विश्वामित्र ने हँस कर कहा—"बहुत अच्छा, देखा जावेगा। मैं आज से एक मास के अनन्तर तुम से काशी में मिलूंगा और उस दिन तुमको या तो दक्षिणा देनी होगी या अपने राज-पाट को फेर लेना होगा।" यह कहकर विश्वामित्र चले गये और राजा अपने महल में रानी को जतलाने के लिये गए। तारामती इस बात से अपरिचित नही थी, जब हरिश्चन्द्र ने अपने दान देने वा बनारस जाने का हाल सुनाया, तो उसने प्रसन्नता पूर्वक कहा—"राजन्! मेरे शरीर पर जो कुछ भूषण हैं वह भी राज के हैं, इसलिए इनको उतारे देती हूँ और मैं भी तुम्हारे साथ काशी चलूंगी, क्योंकि काशी स्वतन्त्र स्थान है। मैं वा मेरा छोटा पुत्र आपके साथ रहकर दुःख में आपके सहायक होंगे।" हरिश्चन्द्र को राज देने का तनिक शोक नही था और अब जब कि इसकी रानी ने इस प्रकार निश्चित होकर बात चीत की, तो वह मन में बड़ा प्रसन्न हुआ और उसी समय प्रवास जाने की तैयारी की गई।

संसार में पुरुष किस बात की आशा रक्खे। पल में क्या हो जावेगा, कोई नही जानता। तारामती अभी दो चार पल पहिले सारे देश की महारानी कहलाती थी, अब उसने सारे भूषण और वस्त्र न केवल अपने शरीर से उतार कर रख दिये, वरंच पाँच वर्ष से न्यून आयु वाले छोटे राजकुमार रोहिताश्व के भी उतार कर रख दिये। क्योंकि वह अब विश्वामित्र के धन थे और उनका साथ ले जाना अधर्म और पाप था। और उन्होंने नग्न शरीर ढाँपने के लिये भिखा-

रियों जैसे वस्त्र डाल लिये थे। रानी ने इस विपर्यय पर हाय तक नहीं किया, न उसके मन में किसी तरह के शोक वा दु ख का विचार हुआ। उसका आश्रय हरिश्चन्द्र था, वह उसकी सारी प्रीति और मनोरथो का पूरा करने वाला था और उसकी खुशी में ही उसका सर्वस्व था। रोहिताश्व की आयु यद्यपि थोड़ी थी, परन्तु वह इतना समझ सकता था कि क्या हो रहा है? माता ने गोद में लेकर उसके वस्त्र भूषण उतार दिये और एक सामान्य कुरता उसके गले में डाल कर कहा—"यह सब पराये का धन है।" वह चुपका हो रहा और चूं तक न की।

बनारस अयोध्या से बहुत दूरी पर है। यह तीनो पुरुष दु खावस्था में उसी समय पैदल वहाँ से चल दिये। आनन्द से पले हुए लड़के और महलों में रहनेवाली रानी के लिए इस तरह प्रवास का दु ख उठाते हुए पाँव घसीटते चलना, उन आपद् में फँसे हुओं के जीवन में नई बात थी। आगे हरिश्चन्द्र और पीछे बच्चे की अँगुली पकड़े हुये उसकी धार्मिक रानी थी। किसी तरह मार्ग के क्लेश को उठाते, दर्द दु ख सहते, यात्रा करते हुए वे बनारस जा पहुँचे।

बनारस आने को तो आ गये, परन्तु विश्वामित्र की दक्षिणा किस तरह दी जाती? केवल एक महीने का प्रण था। कई दिन रास्ते में हो चुके थे। शहर में आए हुए भी कई दिन हो चुके थे। माँगने का साहस नही पड़ता था। निदान इसी चिंता में क़रीब करीब वह महीना गुजरने पर आया। हरिश्चन्द्र आश्चर्य में था कि इकरार का दिन आ पहुँचा, अभी तक रुपये का कोई प्रबन्ध नही हुआ।

पति को चिंतातुर देखकर तारामती ने कहा—"भगवन्

आपको किस बात की चिंता है। आप अपनी प्रतिज्ञा पूरी कीजिये। धर्म-कार्य मे घबराने या चिंतातुर होने की क्या आवश्यकता है? धर्मात्मा पुरुषो के लिये यह परीक्षा का समय है। अन्त में सर्वथा भला होता है। ईश्वर को अपने सच्च धर्मात्मा पुरुषो की प्रतिज्ञा पूरी करने का स्वयं सोच रहता है। आपने कितने अश्वमेध यज्ञ किये हैं, आप संसार में सत्यवादी प्रसिद्ध है, ईश्वर आपकी अवश्य सहायता करेगा।" हरिश्चन्द्र को अपनी स्त्री की दृढ़ प्रतिज्ञा देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा—"सुन्दरी! यह सब सत्य है, परन्तु अब तक दक्षिणा का कोई प्रबन्ध नही हुआ। समय भी कैसा कठिन होता है। समय के बदलते पुरुष की दशा भी बदल जाती है।" रानी ने उत्तर दिया—"यह सब सच है। समय आता जाता है। पुरुष यदि अपने धर्म पर स्थिर रहे, तो उसको किसी का खटका नही है। आप शोक न करें। समय की असमानता को दोष न दें। मैं आपकी दासी हूँ। मैं आपको इसलिये दी गई हूँ कि आपके काम आऊँ। यदि आपको कही रुपया नही मिल सकता है, तो अपनी तारामती को बेच दीजिये। और ब्राह्मण को दक्षिणा देकर अपना वचन सच्चा कीजिये। यदि आज नहीं तो फिर मैं किस दिन स्वामी के काम आऊँगी?"

इन बातों ने हरिश्चन्द्र के हृदय को अधिक दुखी बना दिया रानी और बाज़ार में बेची जावे! यह किस तरह होगा? उसकी सारी रात सोच विचार में कट गई। प्रातःकाल का तारा प्रकट हुआ। कुक्कुट ने बाँग दी, वायु चलने लगी। थोड़ी देर के बाद सूर्य की किरणों ने संसार को प्रकाशित

किया। उसी समय चिंतातुर हरिश्चन्द्र को विचार उपजा कि आज प्रतिज्ञा का अन्तिम दिन है।

वह बेचारा सोच ही रहा था कि विश्वामित्र आ पहुँचे और बोले—"राजन्! क्या हाल है? यदि आज सायंकाल को सूर्यास्त होने के समय तुम ने दक्षिणा नही दी, तो कहा जावेगा कि हरिश्चन्द्र इकरार का पक्का और वचन का सच्चा नही है और मैं तुम्हारा दान भी लौटा दूंगा।" तारामती घबराई और बोली—"प्राणनाथ! जल्दी करो, मुझे बाज़ार ले चलो। तारामती आप पर न्योछावर है। संसार को कभी यह कहने का समय न मिले कि हरिश्चन्द्र की बात झूँठी पड़ गई कुछ चिन्ता नही, यदि मुझ पर आपत्ति आवेगी तो मैं सहार लूंगी; परन्तु आप अपने सच्चे स्वभाव को कलंकित न होने दीजिये।"

हरिश्चन्द्र हक्का बक्का हो गया। बात चीत करते-करते कई घण्टे व्यतीत हो गये। निदान चुप चापी के साथ वह तारामती और रोहिताश्व को लेकर चौक में आया और अपनी वाणी से कहा—"यह दासी बेचने के लिए है, जो चाहे सौदा करले।" अयोध्या की रानी और बाज़ार में बिके! दैव! तुझ पर किसी का वश नही है। कर्म, तेरी गति प्रबल है। लोग बेचनेवाले की तरफ़ झुके। राजा और रानी दोनों के मस्तक से राज और धर्म का तेज प्रकाशित था। किसी का साहस नही पड़ता था कि खरीद ले। कौन जाने कही वह उपहास न कर रहा हो। लोग एक एक करके अलग हो गये। राजा अतीव विस्मित हुआ। अन्त को कौशिक नाम एक कन्दर्प ब्राह्मण ने कम क़ीमत लगाकर रानी को मोल ले लिया। रुपया थोड़ा मिला। राजा ने चाहा राजकुमार रोहिताश्व को भी बेचकर

न्यूनता को पूरा कर दें। ब्राह्मण ने कहा—"गौ के साथ उसका बछड़ा भी बिकता है, इसकी अलग कीमत नही लगाई जावेगी।" और वह रानी और राजकुमार का हाथ पकड़ कर घसीटता हुआ ले चला। तारामती ने दृष्टि भरकर हरिश्चन्द्र को देखा—"प्राणपति! अभागी तारा चरणो से अलग होती है। आप इसको भूल न जाना। यदि मैंने दान दिये है या यज्ञादि किये हैं तो फिर आपका दर्शन वा मिलाप होगा।" रोहिताश्व के नेत्र डबडबा आये। निर्दई ब्राह्मण ने उस पर दो चार उलटी सीधी बात सुनाई और बड़े क्लेश के साथ रानी को धक्के देता हुआ वहाँ से ले चला। हरिश्चन्द्र देखता का देखता रह गया। क्या करता। रानी पर अब उसका स्वत्व नही रहा था। धैर्य का पत्थर हृदय पर रख लिया और क्रोध के वेग को रोक रक्खा। रानी और रोहिताश्व बिक गये। मन्द-भाग्य हरिश्चन्द्र से उसकी सच्ची दौलत छीनी गई। इस पर भी दक्षिणा पूरी नही हुई। अन्त में इसने अपने आपको एक वीरभद्र नामी चाण्डाल के हाथ बेच दिया और उसने अयोध्या के राजा को यह सेवा दी कि श्मसान में मुर्दे जलानेवालों से कफ़न का कुछ भाग और नियत कौड़ियाँ लेकर तब उनको दाह-कर्म की आज्ञा दे। ग़रीब राजा ने उस सेवा को स्वीकार कर लिया, परन्तु वचन से न हटा। अयोध्या का सिंहासन और श्मसान भूमि, क्या भयानक दुर्गति है!

रानी तारामती ब्राह्मण के घर गई। वह दुष्ट रात दिन उससे सेवा लिया करता, क्षण मात्र भी विश्राम नहीं लेने देता था और सदैव झिड़कियाँ दे-देकर उसको बड़े दुर्वचन सुनाता रहता। धर्मात्मा रानी सब कुछ सहारती थी। रोहिताश्व से

भी ख़राब सेवा ली जाती थी। कभी-कभी जब उस सुकुमार के कपोल तमाचों से लाल किये जाते, तो दीन रोता हुआ माँ की गोद से चिपट जाता। रात दिन के काम धन्धे से अवकाश पाकर जब रानी अलग बैठती तब अपनी दशा को स्मरण करके रोने लगती। यदि रोहिताश्व जागता रहता तो अपने छोटे-छोटे हाथों से आँसू पोछता और तोतली बातो से धैर्य देता। यह उसकी तसल्ली का कारण था। उसको देखकर रानी प्रतिदिन की गालियाँ झिड़कियाँ सहार लेती थी और ईश्वरेच्छा को प्रबल मान दिन काटती थी। ब्राह्मण अत्यन्त ही कंदर्प था। रानी को खाने पीने के लिये भी काफ़ी नही देता था, ग़रीब फटे पुराने कपड़े लपेटे रहती थी। भूमि पर लेटकर रात बिता देती। प्रात काल होते ही घर की टहल सेवा में लग जाती। रोहिताश्व प्रात उठते ही सब से पहिले ब्राह्मण के वास्ते बाग़ से फूल तोड़ लाया करता और जो कुछ और काम कहा जाता उसे शान्ति से पूरा कर देता। यह उन दोनों के प्रतिदिन के काम का चित्र था। एक तो रानी को आपत् का दुःख, दूसरी ओर ब्राह्मण की क्षण-क्षण में कठोरता, इस पर जब वह निर्दयता से रोहिताश्व को मारने लगता, तो उसके कलेजे पर छुरी चलने लगती। पाठको! संसार में माता की दया प्रसिद्ध है। यदि पुत्र को तनिक दुःख पहुँचे, तो माता का हृदय विदीर्ण हो जाता है। परन्तु लाचार रानी जो कुछ कठिन क्लेश आते उन्हें सहारती। क्या करती, कुछ वश नही था। ईश्वर शत्रु को भी ऐसे बुरे दिन न दिखावे।

वह घर भर में मन्द-भागिनी, जन्म-जली और निकम्मी कहलाती थी और अच्छे दिन आने की उसको आशा नही

थी। यदि पुरुष को अपने अच्छे दिन आने की आशा हो, तो उसके दिन सुगमता से कट जाते हैं। परन्तु वह जानती थी कि स्वामी ने उसे दूसरे के हाथ बेच दिया है, मृत्यु के बिना और कोई दुःख से बचने का उपाय नहीं रहा था। तारामती जितनी तू श्रेष्ठ थी, संसार ने वैसा ही तुझको दुःख दिया। एक दिन सायंकाल के समय जब रानी बर्तन मांज रही थी, पड़ोस के लड़के जो रोहिताश्व के संगी साथी थे और फूल चुनने से लिये बाग़ में जाया करते थे, रोते हुए आए और बोले—"माई रोहिताश्व को काले नाग ने डस लिया। वह वृक्ष के नीचे मरा पड़ा है। चल, उसको उठा ले आ।" अरे यह क्या हो गया? तारामती के होश जाते रहे। कलेजा धक से रह गया। भगवन्! यह क्या बात है?

बेचारी रानी रोती पीटती नंगे सिर ब्राह्मण के पास आई—"महाराज रोहिताश्व को साँप सूँघ गया। मेरे भाग्य को आँख फूट गई। आज्ञा दीजिये उसको उठा लाऊँ।" ब्राह्मण कठोरता से कहने लगा—"मन्द-भागिनी! रोती क्यों है? मरना था मर गया। बनारस में रोज सैकड़ों मरते रहते हैं, जा श्मसान में जलाकर शीघ्र ही लौट कर आ। ऐसा न हो काम काज में हरज हो।" रानी रोती हुई बाग़ में आई, रोहिताश्व सचमुच मुर्दा पड़ा था। उसकी स्वाँस बन्द थी। नाड़ी का पता नहीं था। शरीर शीतल हो चुका था। हाय ईश्वर! इस आपत् का कहीं ठिकाना है? दीन ने मुर्दे को छाती से लगा लिया—"प्यारे रोहिताश्व! मेरा कलेजा! मेरा प्राणांश! क्या इसी लिये मैंने तुझको पाला था परमात्मन्! मैंने क्या अपराध किया था कि यह दिन देखने में आये?" रानी धाड़ें मार-मार कर रो रही थी, कि ब्राह्मण

वहाँ पहुँच गया—"अरे तू अभी यहाँ ही चिल्ला रही है। देखा अँधेरी रात है। काली-काली घटायें छाई हैं। जल्दी श्मसान में ले जाकर लाश को जलाकर चली आ।" वह बेचारी बेटे को छाती से लगाये उस पते की ओर चली जिसे ब्राह्मण ने बताया था। वह पहिले अकेली कभी नही निकल थी। सायंलाक के समय सूर्य्यास्त हो चुका था। अँधेरा हो चुका था। साथ न कोई आदमी न आदमजात। अयोध्या की रानी अकेली श्मसान की ओर चली। घण्टो के अनन्तर भटकती-भटकती और राह पूछती हुई जिस समय वह नदी के किनारे पहुँची, सारा घाट सुनसान पड़ा था। कुत्ते आदमियों की लाश की तलाश में इधर उधर भोक रहे थे। वह थक गई थी। सामने एक मुर्दे को जलते देखकर उसने समझा कि यही श्मसान है, जरा श्वाँस ले लूं फिर लड़के का कार्य्य करूँगी। लाश को उसने उतार कर भूमि पर खर दिया। बिजुली की चमक से मुर्दे रोहिताश्व की सूरत पर फिर दृष्टि पड़ी। माता का हृदय फट गया। उस समय कोई रोक टोक करने वाला नही रहा था। वह फिर खूब दिल खोलकर रोने लगी—"रोहिताश्व! रोहिताश्व! बेटे! तूने माता को छोड़ दिया। अब कौन मेरे आँसू पोछेगा? कौन गले से लिपट कर मुझे धैर्य्य देगा? तू राजा का स्मारक था। तुझको देखकर आपत्ति कटती थी। हाय! तू भी छिन गया। मेरे हाथ का तोता उड़ गया। पति-वियोग का दुःख क्या कम था कि लड़का भी मुझ से अलग कर लिया गया। मेरे दुःख वा पीड़ा की समाप्ति हो चुकी।

चल वसा आँखों का तारा हाय हाय।
था वही माँ का सहारा हाय हाय॥

राज छूटा बन्धु भाई सब छुटे।
लुट गया सामान सारा हाय हाय॥
किसका शिकवह किससेकहिये हालादिल।
डूबा क़िस्मत का सितारा हाय हाय॥
ग़म ग़लत करती थी इसको देख कर।
दैव! तेरा क्या बिगाड़ा हाय हाय॥
रात अँधेरी बड़े तूफ़ान का है जोर शोर।
है किधर यारो! किनारा हाय हाय॥
मौत! क्यों लेती नहीं अब तू खबर।
कौन है यहां अब हमारा हाय हाय॥
गोद खाली हो गई किस्मत फूटी।
तू किधर बेटा सिधारा हाय हाय॥
आँखें पथराई हैं, लब हैं तेरे खुश्क।
माँ से कहदे किसने मारा हाय हाय॥
चूर है मेरा कलेजा दर्द से।
सबर अब कैसे हो यारों! हाय हाय॥
बाप को इस दम कहाँ होगी खबर।
बेटा स्वर्ग को है सिधारा हाय हाय॥

आवाज़ आई—"ख़बरदार! कौड़ी वा क़फ़न दिये बिना मुर्दे को आग न लगाना।" रोती हुई रानी चौंक पड़ी। सामने एक लम्बा चौड़ा जवान कंधे पर लाठी रक्खे हुए हाँक लगाता

चला आ रहा था—"ख़बरदार ! कौड़ी वा कफ़न दिये बिना मुर्दे को आग न लगाना ।" वह थोड़ी देर मे रानी के पास आ पहुँचा – "सौभाग्यवती ! तेरी आवाज़ सुनकर हृदय फटा जाता है, तू कौन है जो इस तरह रो रही है ?" रानी फिर चौंकी, यह तो किसी ऐसे पुरुष की आवाज़ है जिससे प्रीति थी । इसने शोक को ढाँप करके कहा—

"राज छोड़कर प्रवासी बनकर यहाँ आई । प्रिय पति से वियुक्त हुई । आज मेरे दु ख का प्याला छलक गया । मेरी गोद का पाला रोहिताश्व भी संसार से चल बसा ।"

इतना सुनना था कि वह पुरुष एकाएक चीख उठा और पृथ्वी पर गिरकर बे-सुध हो गया । रानी घबराई । यह कौन पुरुष है ? इतने में बिजुली चमकी और उसने उस अचेत पुरुष के स्वरूप में अपने पति की आकृत देखी । हाय दैव ! आज ही सारी आपत्ति का पहाड़ मुझ पर टूट पड़ेगा । उसने पानी मे धोती तर करके मुँह पर छींटे दिये । हरिश्चन्द्र ने नेत्र खोले और दूसरे क्षण में स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे के गले मिल कर ऐसे रोने लगे कि उनके वस्त्र तर हो गये । थोड़ी देर बाद हरिश्चन्द्र ने रानी से उसकी आपत्ति की कथा पूछी और जब वह सम्पूर्ण वृतान्त सुना चुकी, राजा ने अपना सिर पीट लिया । कर्म पर किसका अख़्त्यार है । आधी रात का समय आ गया । राजा ने कहा—"रानी कफ़न वा कौड़ी देकर अपने पुत्र का दाह-कर्म करदे ।" रानी ने रोकर कहा—"महाराज, मैं कौड़ी और कफ़न कहाँ से लाऊँ । मुझ पर क्षमा करो ।" परन्तु हरिश्चन्द्र ने कहा—"धर्म आज्ञा नहीं देता कि स्वामी की रसम लिये बिना तुझको दाह-कर्म की आज्ञा दूं ।"

वह इस तरह बात चीत कर ही रहे थे कि इतने में

चाण्डाल कई पुरुषों को साथ लिये हुए आ पहुँचा। वह आदमी ज़ोर से कहते आते थे कि काशीराज के राजपुत्र को एक स्त्री स्मशान की ओर उठा लाई है, क्या आश्चर्य है उसने मार डाला हो। उसकी तलाश में हम घण्टो से परेशान हैं।" यह कहते हुए वह उस स्थान पर पहुँचे जहाँ राजा रानी कौड़ी कफ़न के लिये तकरार कर रहे थे। पुरुषों ने मशाल की रोशनी में स्त्री और बालक को देखकर कहा—"बस, वह स्त्री यही है। इसी ने ही राजपुत्र को मारा है। अब इसको भी यहाँ मारना चाहिये।" रानी ने कहा—"भाइयो, कुशल तो है, यह मेरा अपना लड़का है, जो मर गया है, मैं इसको जलाने आई हूँ" हरिश्चन्द्र ने भी साक्षी दी। परन्तु वहाँ कौन सुनता था। पुरुषो ने कहा—"अच्छा यदि तेरा ही पुत्र था तो कफ़न वग़ैरह कहाँ है?" रानी क्या जवाब देती चुप हो गई। चाण्डाल ने कहा—"निःसन्देह यह डायन है। इसको अभी मार डालें।" हरिश्चन्द्र ने चाण्डाल को समझाना चाहा। परन्तु उसने कहा—"तू क्या विचाद करता है? तेरा धर्म है कि तू मेरी आज्ञा माने। तू मेरा दास है। सेवा करने की शपथ की है। ले इस खड्ग से अभी इस स्त्री का सिर काट दे।" हरिश्चन्द्र चुप हो रहा, आख़िर तलवार उसने अपने हाथ में ले ली।

आपत्ति-ग्रस्त रानी ने कहा—"महाराज, जल्दी करो। ऐसा भाग्य फिर न आवेगा। आपके हाथ से क़त्ल होने में मेरा जन्म सफल होगा। मेरे दुःखों की समाप्ति करों। प्राण-पति, सोच बिचार न करो। मेरी ओर देखो, पुत्र भूमि पर लेट रहा है। इस से बढ़कर क्या आपत्ति होगी?" हरिश्चन्द्र जानता था कि रानी निर्दोष है, परन्तु स्वामी की आज्ञा

मानना धर्म था। इसने तलवार उठाई। रानी ने सिर झुका दिया और निकट था कि उसका सिर एक ही वार में तन से अलग हो जाता कि इतने में दस बीस पुरुष चारो ओर से दौड़ पड़े—"हॉ-हाँ! ऐसा न करो।" और दूसरे क्षण मे एक पुरुष ने तलवार उसके हाथ से छीनकर फेंक दी। यह विश्वामित्र था और उसने कहा—"हरिश्चन्द्र! तू धन्य है! पर्वत हिल सकता है, परन्तु तुम दोनों अपने धर्म में दृढ़ हो। तुम्हारा नाम संसार में सर्वदा जीता रहेगा। लोगों को इस में ऋद्धि मिलेगी। यह दु.ख मैंने ज्ञान बूझकर तुम्हारी परीक्षा के लिये दिये है। रोहिताश्व मरा नही, परन्तु बे सुधकारक औषधि से मुर्दा बनाया गया है। मैं अभी इसे जीवित किये देता हूँ।" यह कहकर उसने रोहिताश्व को अच्छा कर दिया। माता पिता पुत्र तीनो गले मिले। विश्वामित्र ने राज्य लौटाना चाहा, परन्तु दिया हुआ दान कौन फिर ले सकता था। इस लिये उनके न मानने पर रोहिताश्व को राज्य-सिंहासन पर बैठाया गया।

ईश्वर करे तारामती का चरित्र हमारी बहू बेटियो को धर्म की शिक्षा दे और वह भी अपने धर्म और कर्तव्य को इसी तरह सीखें।

१७—करमदेवी और उसकी सन्तान

पिउ प्यारे के नेह में, तन मन लागी आग।
प्याला पीया प्रेम का, लीया अचल सुहाग॥

सतगुरु राह बताइया, शब्द किया उपदेश।
पंखा उपजा प्रेम का, उड़ पहुँची पिय देश॥

सवत् १५६८ में अकबर ने चित्तौर पर चढ़ाई की। जिस प्रकार रण विजयी जैमल ने मुग़ल बादशाह का सामना किया, जिस वीरता से राजपूतों ने देश-हितैषिता के लिये प्राण त्याग दिया, जिस साहस और वीरता से सोलह वर्ष की उमर के लड़के पुत्तू (जैमल के पुत्र) ने तीन सुकुमारी राजपूतनियो के साथ रण में शत्रुओ के छक्के छुड़ा दिये, वास्तव में वह सीन आँखो मे रखने योग्य है। वीर पुरुष तो अलग रहे, अल्प अवस्था की लड़कियो का अपने कोमल हाथों में तलवार लेकर मुग़लों से लड़ना वास्तव में परम उत्साह बढ़ानेवाला इतिहास है।

जैमल मर चुका था। अकबर ने धोखे से अँधेरी रात में छिपकर उसको बाण से मार गिराया था। राजपूताने का वीर रुधिर मे लतपत हो गया। अब कौन था जो शत्रु का सामना करता। दूसरे दिन मुग़ल दुर्ग (क़िला) के फ़ाटक पर चढ़ गये। राजपूतो के लिये दासत्व की शृंखला की जंजीर खड़-खड़ाती हुई आ रही थी। एक सोलह वर्ष का छोटा लड़का क्रोध में आकर उठ खड़ा हुआ—"हाय! मेरे रहते हुए चित्तौर शत्रु के हाथ लगे?" यह सिहराज जैमल का इकलौता बेटा था। उसने माता की आज्ञा से अपने पिता के धर्म का पालन किया।

करमदेवी ने खुशी से बेटे को लड़ाई का पटाभूषण पहिनाया

और कहा—"जा बेटे ! आज मेरी छाती के दूध को सुफल कर।" पुत्तू माता से विदा होकर अपनी पत्नी कमलावती से मिला। उसने हसते हँसते कहा—"प्राणपति ! चलो ! अब स्वर्ग मे मिलेंगे।" करणवती पुत्तू की बहिन थी। वह दौड़कर भाई के गले से लिपट गई—"वीर ! तेरे मियानसे तलवार लटकाना मेरा काम है। ला मैं तलवार बाँध दूं।" इस प्रकार तीन प्यारे प्रेमियो से मिलकर वह बच्चा दुनिया के सब से बड़े बादशाह से लड़ने चला।

अकबर की सेना दो विभागो में थी। एक विभाग की कमान उसके हाथ में थी। दूसरे का सेनापति कोई और जनरल था। इस दूसरी सेना से पुत्तू की मार धर होने लगी, रुधिर की नदी बह निकली।

छंद

कादर भयंकर रुधिर सरिता बढी परम अपावनी।
दोउ कूल रथ रेत चक्रावर्त बहुत भयावनी॥
इक एक सम फिर निकर छेदे नभ उड़त हय सोहहीं।
जनु पापि दिनकर निकर जहँ तहँ विबुध तुच्छ पोहहीं॥

दोहा

वीर परे जनु तीर तरु, मज्जा बह जनु फैन।
कायर देखत डरहिं जिय, सुभटन के मन चैन॥

दोपहर हो गया। सूरज सिर पर आ गया। अकबर सेना की दशा देखता हुआ उसकी सहायता के लिये आ पहुँचा। पुत्तू केवल बालक ही नही था, वरन् दूरदर्शी और समयानुसार काम करनेवाला था।

सामने एक पहाड़ी गुफा दिखाई दी। उसके आगे कई घने वृक्ष लगे थे। इन्ही झाड़ियो की ओट से गोलियो की बौछार होने लगी। अकबर ने आश्चर्यित होकर चारों और देखा। वृक्षो की ओट से तीन स्त्रियाँ खड़ी हुई मुसलमानों को बन्दूक का निशाना बना रही थी। एक छोटी थी और दो युवा थी, तीनो घोड़ो पर सवार थी। तीनो ही अस्त्र से आभूषित थी। अकबर उनको देखकर काँप उठा—"अल्ला हो अकबर, स्त्रियाँ और यह वीरता ?" उसके कई वीर सेनापति इनके हाथ से बे-जान पृथ्वी पर पड़े थे। वह दंग रह गया और बड़ा लज्जित हुआ।

एक ओर करमदेवी. कमलावती और करणदेवी वीरता दिखा रही थी, दूसरी ओर सिहनाद करता हुआ पुत्तू शत्रु को छिन्न भिन्न कर रहा था। करमदेवी क्या जानती थी कि बेटे को इस क़दर अकेले लड़ना पड़ेगा। कमलावती को यह नही ज्ञात था कि उसका पति सेना लिये बिना दुनिया के बड़े बादशाह का सामना करेगा। करणदेवी को इस विचार से दु.ख हुआ कि उसका भाई रणक्षेत्र में अकेला जूझ रहा है।

पुत्त् ने अक़बर को अपनो ओर आते देखकर समयानुकूल आक्रमण किया। तीनो स्त्रियाँ झाड़ियों से निकल कर बिजुली की भाँति चमकती हुई तलवारों को लेकर अक़बर की सेना पर टूट पड़ीं, एक ओर पुत्तूसिह व्याघ्र, दूसरी ओर तीन सिहनी गाजर मूली की तरह मुग़लों को काट रही थी। परन्तु यह अवस्था कब तक रह सकती थी, एक के लिये दो बहुत होते हैं।

सन्ध्या समय से पहिले यह चार पवित्र आत्मायें देश हितैषिता पर न्योछावर हुईं। उनका पृथ्वी पर गिरना था

कि तड़ाके का शब्द सुनाई दिया। कोट सुरंग से उड़ गया। हज़ारो स्त्रियाँ लोक-लाज और धर्म-रक्षा के लिये जीते जी चिताओं पर बैठकर स्वर्ग को चली गईं। इनके शरीर की पवित्र ज्वाला आकाश में प्रचण्ड हुई। अक़बर हक्का बक्का हो कर देखने लगा। यह इस प्रकार की अग्नि थी जिसकी तीन चिनगारी और एक लपट ने अक़बर की सेना का सत्यानाश कर दिया था।

यह भारत देश की अंतिम वीरता थी। मित्रो! युवा-पुरुषो! इस सोलह वर्ष की अवस्था वाले लड़के की पवित्रता को अपने हृदय मे धारण करो, क्योंकि वह—

देखत में लड़िका लगै, कीन शत्रु-दल नाश।
को रण विजयी जगत में, जो आवै यहि पास॥
जासु बाण लागि महि परे, मुगल वीर रण-खेत।
तासु देखि अकबर अतिहि, भय-वश रहा अचेत॥

—बी० सी० सिंह।

मित्रो! आप अधर्म और पाप से न लड़ो, भारत देश में धर्म की जान डालो। परन्तु पुत्तू यह साहस और वीरता कहाँ से लाया था। यह उसकी माता करमदेवी की शिक्षा का फल था। पवित्र और सुशिक्षित मातायें सन्तान को सिखाती रहती हैं।

१८—महारानी सती

जा पिव की मैं प्यारिनी, ताकर अन्तर बास।
घट का परदा खोलिया, जा बैठी पिय पास॥

पपिहा पिय-पिय रटि मरा, स्वाति बूँद की आस।
मैं पिय-पिय रटि लाइकै, जा पहुँची पिय पास॥

—बी० सी० सिंह।

शिव अपने समय का अद्वितीय योगी था। राजा से लेकर प्रजा तक सब उसकी पूजा करते थे। शिव की धर्म-पत्नी का नाम सती था। यह जितनी ही सुन्दरी और रूपवती थी उतनी ही गुणवती और धर्मात्मा थी। यह महाराजा दक्ष की बड़ी बेटी थी जो आर्यवर्त का भूपाल चूड़ामणि था।

किसी राजकुमारी का साधु की स्त्री बनना प्राचीन समय में घृणित नही समझा जाता था। स्त्रियाँ अपने इच्छानुसार स्वयंवर खोजकर विवाह करती थीं। सती ने राजा महाराजाओं को त्याग कर शिव को अपना पति बनाया। राजमंदिर के सुख-विलास को छोड़कर उसने जंगल में रहना स्वीकार किया। शिव अपनी धुन में ऐसे मस्त थे कि उनको दीन दुनिया की कुछ खबर नही थी। कैलाश पर्वत की ऊँची और हिम की ढकी हुई चोटी को उन्होंने अपना निवास-स्थान बनाया था। बाघम्बर उनके लिए सब से उत्तम वस्त्र था। मृगछाला तोषक का काम देता था। पहाड़ के फल फूल उनकी क्षुधा निवारण करते थे। पहाड़ी झरने उनकी पिपासाग्नि को शांत करते थे। प्रतिक्षण योग के साधन ने उनको इतना बे-सुध बना दिया था कि उनको अपने तन बदन की खबर नहीं थी और यही कारण था कि गत समय में लोग शिव को

बावला कहते थे। वह यह नही समझते थे कि शिव किसी और ही रँग में रँगे हुए है। परमात्मा के प्रेम के आनन्द में वह इस प्रकार मग्न है कि इस संसार को कठपुतली का तमाशा या पानी का बबूला प्रतीत करते हैं। वास्तव में शिव को कैलाश के शून्य स्थान के निवास और सांसारिक पदार्थों की न्यूनता ने उनको योगाभ्यास के लिए बहुत समय दे रक्खा था।

जब से सती ब्याह कर आई, कैलाश की कुछ विचित्र ही शोभा हो गई। फूस की कुटी जिसे देखने से पहिले घृणा होती थी, अब रमणीक और सुहावनी बन गई थी। इधर-उधर सुगंधित पुष्पलताएँ भी लगी हुई थी। हरे भरे बेल पत्ते कुटी की दीवारो पर फैले हुए थे जिनके बीच-बीच में लाल रंग के फूल हरी टहनियों में इतने शोभायमान थे कि देखनेवाले का जी लुभा जाता था। लेख-द्वारा उस रमणीक और शोभायमान स्थान का चित्र प्रकाशित करना कठिन है। जिस किसी ने इस पहाड़ की चोटी पर ऐसी मनोहर पर्णशाला को देखा हो वह उसका चित्र निःसन्देह अपने हृदय में धारण कर सकता है और वह अपने इस विचार में मग्न होकर आनन्द को प्राप्त हो सकता है।

सती वास्तव में इतनी पवित्र और शुद्ध आत्मा थी कि अब तक हिन्दुओ के हृदय में उसके प्रेम की नदी प्रवाहित हो रही है। कहाँ महाराजा दक्ष का राज-भवन, जिसमें सैकड़ों सखी सहेलियाँ मुसकुराती हुई राजकुमारी की आज्ञा-पालन को अपना परम धर्म समझती थी और कहाँ कैलाश पर्वत की हिम से ढकी हुई चोटी, सुनसान स्थान जहाँ नन्दी और भृंगी शिव के दो शिष्यों को छोड़कर बात चीत करने को भी किसी का नाम तक नही। परन्तु सती बड़ी प्रसन्न वा आनन्दित थी,

क्योंकि वही उसको पति की सेवा और उनकी आज्ञा-पालन का समय मिलता था। सुन्दर बहुमूल्य चमकीले वस्त्रों की जगह फटे पुराने कपड़े कमर से लटकते थे। जड़ाऊ आभूषण का साधु स्त्री के लिये क्या काम था। इस प्रकार वह पवित्र देवी छाया की भाँति पति के संग रहकर आनन्द पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करती थी और सांसारिक सुख का भूलकर भी स्मरण नहीं करती थी।

महात्मा योगिराज शिव सती की सेवा से बड़े प्रसन्न रहते थे। शिव और सती का मिलाप सोने में सुहागा था। जिसको ऐसी पवित्र, शुद्ध चित्त, सुशील और पतिव्रता स्त्री मिल जाय, तो फिर उसका कहना ही क्या है। स्त्रियो को लोग अच्छे कामों में लगाना, उसमें विघ्न डालने का मुख्य कारण समझते है। सती रात दिन तन मन से शिव के सारे कामों को भली भाति किया करती थी। इस प्रकार वर्षों तक शिव और सती हिमालय पर अपने दिन काटते रहे।

सती के विवाह से दक्ष अप्रसन्न था। उसको शिवजी को अपनी कन्या का वर स्वीकार करना एक चक्रवर्ती राजा के गौरव में लाघव का कारण समझ पड़ता था। परन्तु वह क्या करता, विवश था। एक समय किसी यज्ञ में जहाँ शिव भी निमंत्रित किये गये थे, दक्ष भी आ निकले। सब लोग स्वागत के लिये खड़े हो गये, परन्तु शिवजी अपने ध्यान में ऐसे चूर थे कि उनको दक्ष के आने की कुछ खबर नहीं हुई और वह वैसे ही बैठे रहे। दक्ष इस बात से बड़ा अप्रसन्न हुआ। उसने समझा, शिव ने जान बूझकर मेरा अपमान किया है। वह चुप चाप बैठा रहा, परन्तु मन ही मन जामात्र के विरुद्ध अनेक प्रकार के कुत्सित विचार उसके हृदय में

होने लगे। उसने दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली कि शिव को इस अपमान का दण्ड देना चाहिये।

यज्ञ समाप्त हुआ। सब लोग अपने अपने घर चले गये। उस समय से दक्ष ने फिर सती और शिव का नाम भी नही लिया। मानो वह उसके लिये मर चुके थे।

परन्तु इस बात को स्पष्ट करने के लिये उसने एक बड़ा यज्ञ किया, जिसमें देश-देश के राजे निमन्त्रित किये थे। सारी दुनिया के ऋषि, महर्षि, पण्डित और ब्राह्मणो को निमन्त्रण भेजा गया था, परन्तु शिव के साथ बेचारी सती को इस उत्सव में आन की सूचना नही दी गई।

घूमते भिरते नारद ऋषि कैलाश पर पहुँचे और सती को दक्ष राजा के महान् यज्ञ की सूचना दी। सती को वास्तव में पति का प्रेम था; इतना था कि वह उनसे क्षण मात्र के लिए भी अलग नही होना चाहती थी, परन्तु बहुत दिनो से उसने अपने पिता को नही देखा था; वह उनके प्रेम मे आकर महात्मा शिव के सन्मुख हाथ जोड़कर कहने लगी—"प्राणनाथ! यदि आज्ञा हो, तो मैं अपने माता पिता को जा कर देख आऊँ।" योगी ने कहा—"प्रिये! दक्ष को मुझ से स्नेह नही है। उसने मुझको नीचा दिखाने के लिए निमन्त्रण नही भेजा।" परन्तु सती के बहुत विनय और हाथ जोड़ने पर शिव ने उसको रोकना अनुचित समझा। उन्होने नन्दी को बुलाकर सती के साथ जाने और उसको कुशल-पूर्वक ले आने की आज्ञा दी। परन्तु चलते समय कह दिया कि—"ऐ सती! उत्सव में जाना एक प्रकार की परीक्षा है, इस परीक्षा में कोई-कोई उत्तीर्ण होता है, क्योंकि जाति-अपमान से अधिक दुःख और खेदजनक कोई बात नहीं है।" परन्तु

सती ने, जिसको माता पिता के देखने की अधिक लालसा थी, इस बात को सुनकर टाल दिया और वह शिव को प्रणाम करके हँसी खुशी बाप के देश की ओर चल निकली।

यह दोनों दक्ष के मन्दिर पर पहुँचे जो स्त्री पुरुषों से भरा हुआ था। मनुष्यों की इतनी भीड़ थी कि तिल रखने की जगह नही थी। भीड़ को चीरती हुई सती वहाँ गई जहाँ उसकी माता प्रसूती बैठी हुई थी। न किसी ने उसका स्वागत किया न क्षेम कुशल का प्रश्न किया। सती के लिए यह सांसारिक प्रेम की पहिली परीक्षा थी। वह बेचारी क्या जानती थी कि सारी प्रतिष्ठा रुपये पैसे की होती है। राज-भवन की सहेलियो ने भी कुछ ध्यान नही दिया। रानी सती के आने की खबर पाकर उठ बैठी परन्तु जब उसकी ओर दृष्टि डाली, धक सी रह गई। वह रोने लगी। बेटी को गले लगाने से पहिले उसने कपड़ा बदलने की आज्ञा दी, परन्तु सती ने स्वीकार नहीं किया। और माता से आज्ञा लेकर उस जगह गई जहाँ दक्ष राजाओं की सभा में बैठा यज्ञ करा रहा था। सभा में सारे स्त्री पुरुष सजे सजाये बैठे थे। सती फटे पुराने चीथड़े लपेटे हुए वहां पहुँची। एक ओर साँसारिक सुखों से मदान्ध राजे महाराजे, दूसरी ओर यह देवी लत्ते लपेटे खड़ी थी।

सती जो साँसारिक बनाव चुनाव से घृणा करता थी, निर्भय होकर पिता के पास पहुँची। उसका मुखारविन्द शरद चन्द्रमा की भाँति चमक रहा था। सब लोग उस देवी की चमकती हुई कांति को देखकर उठ खड़े हुए और उसको उचित आसन देने का प्रबन्ध करने लगे। परंतु दक्ष की आँखें क्रोध से लाल हो गईं, होंठ काँपने लगे। वह अपने आपे

से बाहर हो गया और सती की ओर देखकर इस प्रकार बे-बुलाये आने पर अनुचित बातें कहने लगा। जब तक वह सती को बुरा भला कहता रहा, वह बेचारी चुपचाप सुनती रही। परन्तु दक्ष के क्रोधानल की ज्वाला प्रचण्ड होती गई। वह फिर समासदो की ओर देखकर शिव को बुरा भला कहने लगा और उसके मुँह से ऐसी अनुचित बाते निकलने लगी जिनको एक पतिव्रता स्त्री कभी नहीं सुन सकती। सती ने हाथ जोड़कर पिता से विनय की कि—"आप मुझे जो चाहे कह लीजिये, परन्तु शिवजी के लिए आप अनुचित बाते न निकालिये।" परन्तु दक्ष कब सुनता था, जो उसके मुँह में आया कह गया निदान जब उसकी बातें बढ़ने लगी और वह मुँहफट सुनाने लगा, सती क्रोध से काँप उठी, उसकी आँखें लाल हो गई। और वह सभा की ओर मुख करके कहने लगी—

"सभ्य पुरुषो! दक्ष पिता ने अच्छा नहीं किया। किसी स्त्री के सामने उसके पति को अनुचित बातें कहना मूर्खता और दुष्टता का काम है। कोई स्त्री इस अपमान को नही सह सकती। ऐसे समय यदि वश चले तो गाली देनेवालों की जीभ निकाल ले। दक्ष मेरा पिता क्यो न हो, परन्तु मैं उसके इस अपराध को क्षमा नही कर सकती। शिवजी मुझको यहाँ आने से रोकते थे, मैने उनकी बात नही मानी। माता पिता का मिथ्या स्नेह मुझे यहाँ खींच ले आया। पति की बातों पर ध्यान न देना यह मेरा पहला पाप है, उनकी निन्दा करना और भरी सभा मे उनके विरुद्ध गाली गलौच सुनना दूसरा पाप था और उनको सुनकर जीवित रहना यह तीसरा पाप होगा। जिसके लिये मै उद्यत नही हूँ। आर्य-जाति

मे स्त्रियो की निन्दा कभी नही की जाती और दक्ष ने इस न्याय को उल्लंघन किया है, इसलिए बिना दण्ड पाये न रह सकेगा और मैं अपने पतित शरीर को कभी नही रख सकती। हे शिव ! तुम इस अपराध को क्षमा करना।"

इतना कहकर सती यज्ञशाला में बे-दम होकर गिर पड़ी। अग्नि ने प्रेम वश होकर उसे अपनी गोद मे खीच लिया। ऐसा प्रतीत होता था कि वह अपवित्र दुनिया सती के रहने योग्य नही रही थी। उसके हाथ पॉव सब मे एकदम आग लग गई, सारा शरीर क्षण मात्र में जल कर भस्म हो गया।

रानी प्रसूती यह समाचार पाकर सती को देखने के लिए दौड़ी। परन्तु सती कहाँ थी। सती का कोमल अंग भस्म हो चुका था। रानी रोई पीटी चिल्लाई, परन्तु अब क्या हो सकता था। सती ने पतिव्रत धर्म को सर्व श्रेष्ठ और संसार को तुच्छ समझ कर अपना प्राण त्याग दिया।

राज-मंदिर में हलचल मच गई। वहा रानी प्रसूती के विलाप से कलेजा फटा जाता था। छोटे बड़े सब की आँखों से आँसू की धारा बह निकली। यज्ञशाला शोक-भवन हो गई। दक्ष की सारी शेखी भूल गई। रंग में भंग पड़ गया। कहाँ क्या था क्या हो गया। वह हक्का बक्का होकर भय से अचेत पड़ा है, क्योकि वह भली भाँति जानता था—

कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करहि सो तस फल चाखा॥

नन्दी ने दौड़कर शिव को यह समाचार सुनाया। वह योगी इस दुःख को न सह सका। क्रोध-वश होकर पहाड़ से उतर कर मैदान में आया और दक्ष की यज्ञशाला में पहुँच

कर उस दुराचारी का शिर काटकर फेंक दिया। परन्तु क्या इससे उसके दु ख की शान्ति हो सकती थी ? इस प्रश्न का उत्तर पाठक स्वयं सोच सकते है। वह बहुत दिनों तक अपनी प्यारी स्त्री के वियोग में पागल की तरह इधर उधर घूमता रहा। निदान धैर्य से काम लिया और फिर कैलाश पर्वत पर पहुँच कर आसन जमा लिया।

सती को मरे हुए लाखो वर्ष व्यतीत हो गये। परन्तु क्या सचमुच वह मर गई है ? नही वह जीती है। आज भी पतिव्रता स्त्रियाँ इसी नाम से पुकारी जाती हैं। विवाह के समय कन्याओ को शिक्षा दी जाती है कि सती की भाँति अपने पति की सेवा करना। भाँवर के समय सती का पवित्र नाम लिया जाता है। हिन्दू मात्र का कोई घर ऐसा न होगा जिसमें शुभ कार्य के पहिले सती की पतिव्रता और पतिव्रत भाव का गीत न गाया जाता हो। क्या इस अवस्था मे सती को मृतक कह सकोगे ?

सती, तू धन्य थी ! सती, तू सचमुच बड़ी पवित्र थी। तेरी दयालुता, तेरा पतिव्रत भाव हमारी बहिन बेटियों के हृदय में प्रगट हो और इस प्रकार उच्च भाव को प्राप्त होकर देश और जाति को वे उसी उन्नति के शिखर पर पहुँचा दें जिस पर वह पहिले था !!!

धन्य धन्य तव पतिव्रत भाऊ।
धन्य धन्य तव शील सुभाऊ॥
धन्य धन्य यह भारत देशा।
जहाँ न संकट दुख लवलेशा॥

धन्य धन्य भारत अवनि, जहँ प्रकटहिं अस तीय ।
जासु कीर्ति के गान को, कोटि शेष कमनीय ॥

१६--पार्वती जी

कहत मर्म मन अति सकुचाई ।
हँसिहँहिं सुनि हमार जड़ताई ॥
मन हठि परा न सुनै सिखावा ।
चहत वारि पर भीति उठावा ॥
सत्य कहहुँ गिरिभव तनु एहा ।
हठ न छुटै छूटै वरु देहा ॥
गुरु के बचन प्रीति नहिं जेही ।
सपनेहु सुगम न सुखनिधि तेही ॥

हिमालय के बड़े भाग मे किसी समय एक महान् तेजस्वी राजा राज करता था। यह परम उत्साही और शूरवीर था। इसकी रानी का नाम सुनैना था, जो बड़ी सुंदरी और धर्मात्मा थी। परन्तु सन्तान न होने से वह प्रायः दुखी रहती थी।

ईश्वर परम दयालु है। वह अपने अधीन पुरुषों की कामनाओं को अवश्य पूर्ण करता है। ईश्वर की कृपा से कुछ काल व्यतीत होने पर सुनैना के गर्भ से एक परम सुन्दरी

कन्या उत्पन्न हुई। माता पिता बड़े आनन्दित और हर्षित हुए। राजा ने उसका नाम पार्वती रक्खा।

इतिहासो में लिखा है कि इस कन्या के उत्पन्न होते ही गिरिराज का कोष धन-धान्य से परिपूर्ण हो गया। प्रजा अत्यन्त सुखी और मंगलमय हो गई।

पार्वती का पालन-पोषण बड़े लाड़-चाव से होने लगा। पाँच वर्ष की अवस्था मे उसको विद्यारम्भ कराया गया और पार्वती ने थोड़े ही काल मे वेद, वेदांग, उपनिषदादि की शिक्षा प्राप्त कर ली।

इस महान् बुद्धि-युक्त कन्या को देखने के लिये समीपवर्ती ऋषि मुनि आदि भी आने लगे। सब से पहिले जो ऋषि आया उसका नाम नारद था। गिरिराज कन्या को गोद में लेकर ऋषि से मिला। वह पार्वती को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ और उसको सत् ज्ञान का अधिकारी समझकर परम आनन्दित हुआ।

गिरिराज ने पार्वती के ग्रहादि राशियो को पूछा। नारद ने कहा—"धन्य है सुनैना, जिसकी कोख को पार्वती ने पवित्र किया है।" माता पिता यह सुनकर हर्षित हुए। गिरिराज ने कहा—"महात्मन्! यह कन्या युवा हुई है, मैं इसके विवाह की चिन्ता में हूँ कि किसी सुयोग्य वर से इसका संस्कार कर दिया जाय, परन्तु इसके योग्य कोई वर नही मिलता।" नारद सच्चा ऋषि था। उसने कहा—"पार्वती के योग्य वास्तव में उत्तम वर मिलना कठिन है। यह तो साक्षात् सरस्वती है। यदि तुम कहना मानों, तो इसको शिव के साथ ब्याह दो; क्योंकि जितनी ही पार्वती ज्ञानवती है, उतने ही शिव योग और ब्रह्म-विद्या के पंडित है। परन्तु कठिनता यह है कि शिव

सदैव समाधि की अवस्था में रहते हैं, इस मन्तव्य का स्वीकार करना कठिन दिखाई देता है।"

गिरिराज और सुनैना ने इसको एक सामान्य बात समझ कर टाल दिया। परन्तु पार्वती के हृदय में नारद की बात गड़ गई। उसने विचारा—"नारद सच्चा ऋषीश्वर और परम दूरदर्शी है, ऋषियों की बात असत्य नहीं होती। मैं शिव के लिये हूँ। यह माना कि शिव एकांत-निवासी योगी है, उन तक पहुँचना कठिन है। परन्तु मैं नारद के कथनानुसार उनकी धर्म-पत्नी हो चुकी, अब मैं उनके सिवाय किसी के साथ विवाह नहीं करूँगी।' पार्वती ने यह सब बात जी में ठान ली।

नारद तो चले गये। सुनैना और गिरिराज अपने-अपने काम मे लग गये। परन्तु पार्वती के हृदय में नारद की बातों ने आग लगा दी। पार्वती कुछ की कुछ बन गई। कौन जान सकता है कि उस पर क्या बीत रही है।

उपजेउ शिव-पद-कमल सनेहू।
मिलन कठिन मन भा सन्देहू॥

पार्वती का प्रेम दिन-दिन बढ़ता गया और उसने ठान लिया कि चाहे जो हो शिव को ही अपना पति बनाऊँगी। प्राण भले ही चले जायँ, पर गुरु का वाक्य कभी न त्यागूँगी।

पपिहा प्रण को तजै, तो तन है बेकाज।
तन छोड़े तो कुछ नहीं, प्रण छोड़े है लाज॥

प्राण प्यारे शिव! तुमको इस पार्वती के पास आना पड़ेगा। प्रेम की डोर तुमको अवश्य ही यहाँ खींच लाएगी।

निदान, पार्वती शिव के प्रेम में आठों पहर मग्न रहने

लगी। माता पिता के समझाने बुझाने से उसके प्रेम की ज्वाला और भी प्रचण्ड होती थी। वह शिव के अनुराग में मग्न होकर घर से बाहर निकली और पर्वत की गुफा मे बैठकर तप करने लगी।

उर धरि उमा प्राणपति चरना।
जाइ विपिन लागीं तप करना॥
अति सुकुमारि न तनु तप योगू।
पति-पद सुमिर तजेउ सब भोगू॥
नित नव चरण उपज अनुरागा।
बिसरी देह तपहि मन लागा॥

पार्वती शिव के अनुराग में लवलीन हो गई। वही एक चित्र उसके चित्त में समा गया।

लाली अपने लाल की, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

शिव की अवस्था यदि योग के आधार से कही जा सकती है, तो पार्वती की समाधि उस से किसी प्रकार कम नही है।

सच्चे प्रेमी मित्रो! तुम प्रेम के नाम पर हँसा करते हो और दूसरे को हँसाते हो।

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
शीश काटि भू में धरै, तब बैठे घर माहिं॥

लोगों ने बहुत प्रयत्न किया कि पार्वती अपने हठ को त्याग दे, परन्तु पत्थर में जोक नहीं लगती। राजा रानी

सबने समझया बुझाया, परन्तु किसी की बात पर उसने ध्यान नहीं दिया।

निदान, राजा के कहने से ऋषियो की मंडली समझाने के लिये आई और उन्होने पूछा—

"बोले मुनि सुनु शैल-कुमारी।
करहु कवन कारण तप भारी॥
केहि आराधहु का तुम चहहू।
हम सन सत्य वचन मिल कहहू॥"

जिसका मन पवित्र होता है, वह संकोच को पास नही रखता। पार्वती प्रेम में मग्न थी। ऋषियो की बात सुनकर शिव के प्रेम-भरे हुए वाक्यो मे मुसकुराकर कहने लगी—

"कहत मर्म मन अति सकुचाई।
हँसिहहु सुनि हमार जड़ताई॥
मन हठि परा न सुनै सिखावा।
चहत वारि पर भीति उठावा॥
नारद कहा सत्य सोई जाना।
बिनु पंखन हम चहहिं उड़ाना॥
देखिय मुनि अविवेक हमारा।
चाहत पति शंकर अविकारा॥"

ऋषि मुसकुराकर कहने लगे—"तुमने भी अच्छे आदमी का कहना माना है, वह नारद ही तो थे जिन्होंने—

दक्ष सुतहिं उपदेशिन जाई ।
तिन फिरि भवन न देखे आई ।।
चित्रकेतु कर घर उन घाला ।
कनककशिपु कर पुनि असहाला ।।
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा ।
आप सरिस सबही चह कीन्हा ।।
तेहि के वचन मानि विश्वासा ।
तुम चाहहु पति सहज उदासा ।।
निर्गुण निलज कुवेष कपाली ।
अकुल अगेह दिगम्बर व्याली ।।
कहहु कवन सुख अस वर पाये ।
भल भूलिउ ठग के बौराये ।।''

पार्वती ऋषियो की बाते सुनकर व्याकुल हो गई । और उनके प्रति कहने लगी—

''जो तुम मिलतेउ प्रथम मुनीशा ।
मनतिउँ सिख तुम्हारि धरि शीशा ।।
अब मैं जन्म शम्भु-हित हारा ।
को गुण-दोषहिं करे विचारा ।।
जो तुम्हरे हठ हृदय विशेषी ।
रहि न जाय बिन किये विरेषी ।।
तौ कौतुकि अन्ह आलस नाहीं ।

वर कन्या अनेक जग माहीं ॥
जनम कोटि लगि रगर हमारी ।
वरौं शम्भु नतु रहौं कुमारी ॥
तजौं न नारद कर उपदेशू ।
आपु कहहिं शत बार महेशू ॥
मैं पा परों कहै जगदम्बा ।
तुम ग्रह गवनहु भयउ विलम्बा ॥"

ऋषियो ने प्रसन्न होकर कहा—"देवी ! तेरी जय हो ॥ तेरा साहस धन्य है !!! हम सब तेरे प्रेम की परीक्षा लेने आये थे । राजा ने हम को शिव के पास जाने की आज्ञा दी है कि हम जाकर उनको तेरा संदेशा पहुँचावे ।"

ऋषियो की मंडली कैलाश पर पहुँची । शिव समाधि मे थे ! सब वहाँ बैठ गये । जब शिवजी की आँखे खुली । सब ने नमस्कार किया और उन्हे गिरिराज का सन्देशा सुनाया । ऋषियो ने पार्वती के प्रम की कथा कह सुनाई । शिव ऋषियो के कहने से जिस अवस्था मे थे वैसे ही उठ खड़े हुए । शरीर पर भस्म मला हुआ था । अंग मृग-छाला से ढका था । अपने साथियो को साथ लिए हुए पहाड़ से नीचे उतरे और गिरि-राज के घर की ओर चल निकले ।

नगर मे बरात पहुँची । साधु को बेढंगा समझ कर सब डरे । घरों में अनोखी बरात की चर्चा होने लगी । जो देखता, हँस देता था ।

जस दूल्हा तस बनी बराता ।
कौतुक विविध होहिं मग जाता ॥

गिरिराज ने बरात की अगवानी की और सुन्दर जनवासे का प्रबन्ध कर दिया, परन्तु यहाँ और ही बात थी। सुनैना स्त्री ही थी। जामाता को इस प्रकार देखकर उसने पार्वती को गोद में उठा लिया और बिलख-बिलख कर रोने लगी—"हाय! मेरी बेटी को कुएँ में ढकेल रहे है। मैं प्राण दे दूंगी, कुएँ में डूब मरूंगी, पहाड़ से गिरकर जान दे दूंगी।"

सब ने समझाया, परन्तु सुनैना कब मानने वाली थी। निदान पार्वती ने सविनय माता से प्रार्थना की कि—"जो मेरे भाग्य में लिखा था, वही हुआ। कर्म की गति को कौन जान सकता है। शिव योगिराज हैं। सारे ऋषि मुनि उनको अपना गुरु मानते हैं। पृथ्वी मंडल के सारे राजे उनके चारण कमलो की धूलि को अपने मस्तक पर लगाते हैं।"

नारद वहाँ उपस्थित थे। उन्होने समझा बुझाकर सुनैना को विवाह कर देने के लिये उद्यत किया। तब पार्वती का विवाह शिव के साथ हुआ और वह ब्याह कर कैलाश मे आई।

यहाँ आकर उसने राजसी वस्त्र और आभूषणो को उतार दिया। पति की तरह साधुनी बनकर वह रहने लगी। उसने अपने श्रेष्ठ आचरणो से कैलाश को स्वर्ग-धाम बना दिया और रात-दिन पति की सेवा में तत्पर रहने लगी।

२०--गेंदाबाई

राजपूताने में दिसम्बर के महीने मे बड़ी सर्दी पड़ती है। दुर्भाग्य से वहाँ सर्दी और गर्मी दोनो ही अधिक होती है। बेचारे लोग बड़े कष्ट से समय व्यतीत करते हैं।

जयपुर में शिविरपुर एक सामान्य ग्राम है। उसका ज़मीदार जालिमसिंह रोब-दाब के लिए बड़ा प्रसिद्ध था। एक दिन संध्या समय अँगीठी के पास बठा हुआ वह अफ़ीम घोल रहा था। पास ही एक युवा लड़की बैठी थी जिसकी अवस्था अनुमान से पन्द्रह सोलह वर्ष की थी। उसने काम धन्धे से छुट्टी पाकर दीपक जलाया और फिर बाप के पास आकर (क्योंकि वह ज़ालिमसिंह की लड़की थी) कहने लगी—

"भोजन तैयार है?'

जालिमसिंह ने कहा—'गेंदा! मुझे खाने की रुचि नही है, आह!"

गेंदा ने उत्तर दिया—"फिर मैंने रसोई किसके लिये तैयार की है? यदि आप कहें तो मैं रामायण लाकर पढ़ूं।"

ज़ालिमसिंह ने मुँह बनाकर उत्तर दिया—"रामयाण को अलग रख। जब देखो तब रामायण। तेरी माता तो रामायण पढ़ते पढ़ते मर मिटी, अब तू पढ़ने चली है। इसी से लोग कहते हैं स्त्रियो को पढ़ाना अच्छा नही।"

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे। निदान जालिमसिंह ने कहा—"गेंदा! मनोहरसिंह बार बार कहला भेजता है, मैं अब इस काम में विलम्ब करना नहीं चाहता। जितनी जल्दी हो अच्छा है।"

गेंदा—(लज्जा से सिर नीचा करके) "अवश्य, परन्तु आप जानते हैं, अम्मा का क्या विचार था ?"

जालिम—"गेंदा देखो, गाय और लड़की जिसको चाहे दे, उसको कुछ कहने सुनने की आवश्यकता नही। ज्ञात होता है कि तुम पढ़ी लिखी हो, इसी से वाद-विवाद करती हो ?"

गेंदा—"यह बात केवल उस समय तक सम्भव है . जब तक... ।"

ज़ालिम—"देखो तुम झट बात काट देती हो, क्या तुम ही अनोखी लड़की हो ?"

गेदा—"पिताजी, चाहे आप मेरी नस-नस काट डालो, मुझे कुछ चिन्ता नही, परन्तु अम्माजी जो संबंध कर गई हैं वह अटल है।"

ज़ालिम—"लड़की, तू बड़ी शरीर है। मनोहरसिंह नव-युवक, वीर और बुद्धिमान पुरुष है, उसी से तेरा विवाह करूँगा।"

गेंदा—"हाय ! अम्मा की बातों का आपको कुछ ध्यान नही है। जब से अम्मा मर गई हैं, आप मुझको ऐसी-ऐसी बातें सुनाकर दुःखी करते हैं। मैं आपको इकलौती बेटी हूँ। मुझे आप अपने पास रक्खे। मैं आपकी रात दिन सेवा करूँगी। केवल एक बात से हारी हूँ।" यह कहकर गेंदा बाप का पॉव पकड़कर रोने लगी।

ज़ालिम का जी भर आया। वह कहने लगा—"किशनसिंह ग़रीब आवारा है। आज कल कौन जाने कहाँ होगा। तुम्हारी माता ने उस समय उसको अच्छा समझकर उसे तुम्हारे योग्य वर समझा था। मैंने अब उससे इनकार कर दिया। तुमको मनोहर के साथ विवाह करना पड़ेगा।"

जिस समय बाप बेटी मे यह बातें हो रही थी, एक नौकर चिट्ठी लिये हुए भीतर आया। उसमे लिखा हुआ था—

"तारीख..... . .. .को किशनसिंह राजपूत महामारी रोग से मर गया..... .. ...।"

जिस समय गेंदा की दृष्टि इन शब्दो पर पड़ी वह चीख़ मारकर पृथ्वी पर गिर पड़ी और व्याकुल हो गई। ज़ालिम और नौकर ने समझा कि वह मर गई। परन्तु आयु के दिन पूरे नही हुए थे, दस घण्टे व्यतीत होने पर उसको चेत हुआ। आँखें धँसी हुई थी। शरीर पीला पड़ गया था। प्रतीत होता था कि वह बरसो से बीमार है। ज़ालिम घाट के पास बैठा हुआ सोच विचार कर रहा था। निदान गेंदा ने बाप की ओर देखा और सिर नीचा करके पूछा—"उसकी मौत कहाँ हुई?" जालिम ने कहा—"तुम अच्छी हो जाओगी तो मैं सब सच बता दूंगा।" तब से दिन-दिन गेंदा का दुःख बढ़ता गया, वह बेचारी निराश हो गई। एक दिन बाप के आते ही मुसकुराकर कहने लगी—"देखो, जब मैं सो जाती हूँ वह मेरे पास आते है। मैं रोती रहती हूँ, वह मेरे आँसू पोंछकर ढाढ़स देते है।" मैं कहती हूँ—"देखो, मैं कुमारी हूँ, मुझे हाथ न लगाओ।" वह कहते है—"दुनिया मे बात ही सब कुछ है। तुम्हारी अम्मा बात हार गई हैं और अब वह आप विवाह करगी।"

ज़ालिम इन बातो को सुनकर मोम की तरह पिघल गया—"हाय। इसके दुःख की कोई औषधि नहीं है। मैं ने अपनी इकलौती बेटी को दुःख दिया।" यह कहकर वह इधर-उधर देखने लगा। इसी प्रकार बहुत दिन व्यतीत हो गये।

किशनसिंह अभी जीवित है। उसकी मृत्यु की खबर फैलाना ज़ालिमसिंह की चाल थी। वह ग्वालियर के राज्य में मुसाहिब था। भाग्य से वह बड़ा धनी हो गया और अब वह बहुत सा धन धान्य लेकर अपने देश को आ रहा है। उसको नही ज्ञात था कि बेचारी गेदा पर क्या बीत रही है।

पतझड़ के दिन आ गए। सर्दी नाम ही नाम की रह गई है। शिविरपुर के चारो ओर पहाड़ियाँ दूर से देखने में सुहावनी मालूम होती है। जालिमसिंह के घर के पास एक देवी का मन्दिर था। गेंदा अकेली पूजा करने जाती है। साथ कोई नही। वह कुछ थकी हुई थी। ज़रा दम लेने के लिए मन्दिर के निकट वृक्ष के नीचे बैठ गई। बेचारी को अपनी दुःख की कहानी याद आई। वह सोच विचार करने लगी। जब कोई खुशी की बात याद आ जाती तो हँस देती थी और जब दुःख की बात याद आ जाती तो रोने लगती। कभी-कभी सिसकती और आह खीचती थी। इतने मे पत्तो की खड़खड़ाहट का शब्द सुनाई दिया। कोई आदमी झपटता हुआ इधर आ रहा था। इसने आँख उठाकर देखा कि किशनसिंह आगे खड़ा है।

"देखो-देखो जल्दी मत करो, मैं वास्तव मे तुम्हारी धर्म पत्नी अवश्य हूँ, परन्तु विवाह संस्कार नही हुआ है।" इतना कहकर गेदा व्याकुल होकर गिर पड़ी। किशनसिंह ने झपट कर उसे गोद में उठा लिया। आस पास से आदमी दौड़े। जालिम भी आया। उसके मुँह पर गुलाब छिड़का गया। उसने आँखें खोल दी। अपने आप को किशनसिंह की गोद में पाकर उसने कहा—"क्यों, क्या माँ ने आकर शादी कर दी? पिताजी कैसे यहाँ है?" यह कहकर उस अभागिनी ने

आँख बन्द करली और फिर नही खोली। मुँह से लोहू की धार बह निकली। उसे तपेदिक। (एक प्रकार का रोग) हो गया था और दो घण्टे के पीछे उसका सब शरीर पानी की तरह ठंढा हो गया। किशनसिंह ने उसकी यह दशा देखकर मियान से तलवार खोचकर अपने कलेजे मे भोक ली। वहाँ मुँह से और यहाँ कलेजे से रुधिर की नहरे बह निकली। इस प्रकार दो सच्ची प्यार करनेवाली आत्मायें बाप की निर्दयता से संसार-क्षेत्र से चल बसी। संसार के धन दौलत का लालच उनके मेल मिलाप में बाधा डालनेवाला था। परन्तु प्रेमी को कौन अलग कर सकता है? यहाँ साथ-साथ एक चिता पर जलाये गये।

सच है, इसी प्रकार की पवित्र और पवित्रता धारण करनेवाली स्त्रियो ने भारत को भारत बना रक्खा था। आह! अब वह आत्मायें कहाँ गईं। क्या ऐसे लोग फिर इस देश में न उत्पन्न होंगे?

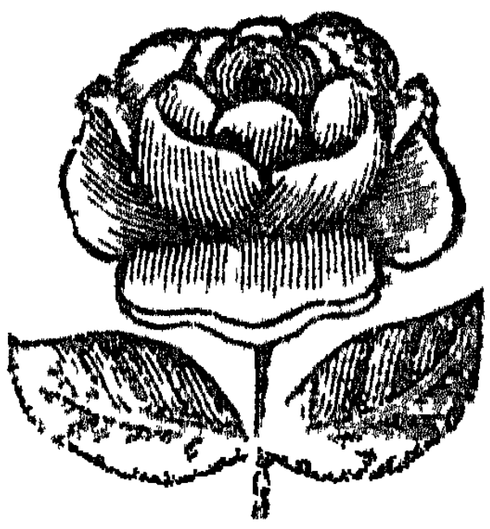

२१—साहिब कुँवरि ।

(पटियाला की रानी)

पटियाला का राज्य सिक्ख राज्यो में सब से बड़ा है। महाराजा साहिब की सलामी १७ तोपो की है और वाइसराय के दरबार मे महाराजा काश्मीर के पीछे उन्ही की प्रतिष्ठा है। सर लेपल ग्रेभर साहिब लिखते है कि—"पटियाला का राज्य ५४१२ वर्ग मील का है और वहाँ की जन-संख्या लगभग १,६५,००००० के है और वार्षिक बचत ३८,००००० रुपया है। सेना मे ८००० सिपाही है और १०० सैनिक ब्रिटिश गवर्नमेन्ट के लिये नियत किये गये हैं।

हमारा इतिहास सं० १७९३ के पीछे का है, जब वहाँ पर राजा साहिबसिंह राज्य करता था। राजा स्वयं राज्य करने के अयोग्य था, इस कारण उसने अपनी बहिन रानी साहिब कुंवरि को राज-काज का काम सँभालने के लिये नियत किया था। पटियाला के राजा को मरहटों ने कहला भेजा कि वह उनको अपना राजा स्वीकार करे। उनको यह दृढ़ विश्वास था कि पटियाला इसको मान जायगा। क्योंकि जिस राज्य की प्रबन्धकर्त्री स्त्री हो, उस राज्य की दशा क्या अच्छी हो सकती है ? किन्तु रानी ने इसके उत्तर मे कहला भेजा कि इन अप्रतिष्ठित शब्दो का तुमको अवश्य दण्ड भोगना पड़ेगा।

रानी के साहस को देखकर आस पास के राजा पटियाला के झंडे तले इकट्ठे हुए और थोड़े ही समय में सात

हज़ार सेना शत्रु के लिये चल निकली। मरदानपुर में जो अम्बाला से कुछ मील दूर पर है, लड़ाई हुई। सिक्ख निर्बल और अयोग्य थे। मरहटे प्रसिद्ध लड़ाके कहलाते थे। सिक्खों के हाथ पाँव ढीले हो गये और सम्भव था कि वह भाग खड़े हो।

यह दशा देखकर रानी रणक्षेत्र में आई और सिपाहियों को उसने ललकारा—"मै केवल तुम्हारे राजा को नही वरन् तुम्हारी भी बहिन हूँ। आओ वीरो! वीरता से काम लो और अपनी बहिन का साथ दो।"

रानी साहिबकुँवरि बड़ी रूपवती और बुद्धिमान स्त्री थी और सरदार जैमलसिंह की धर्म-पत्नी थी, जो वीर दोआबा के बड़े हिस्से का रईस था। अपने पति की आज्ञानुसार रानी ने राज के काम को सम्हाल लिया और यह सोचकर कि उसको हर एक प्रकार के अधिकार दिये गये हैं, वह मंत्री के कर्तव्यों का पालन करने लगी।

थोड़े दिन पीछे रानी को समाचार मिला कि सर्दार जैमलसिंह को उसके भाई फतहसिंह ने बंधन में डाल रक्खा और सारे राज्य की प्रजा दुःखी है। रानी राजा से सेना लेकर फतहगढ़ की ओर चली और अपने पति को उसने शत्रु के पंजे से छुड़ाया। इस विजय से उसकी सब जगह धाक बँध गई और लोग उससे डरने लगे।

सं० १७९४ में मरहटों ने पटियाला पर फिर धावा किया और मार्ग में कई सिक्ख सर्दारों को उन्होंने अपने आधीन किया। सिपाही लज्जित हुए और फिर लड़ाई होने लगी। दोनो ओर की सेना काम आई। रात के समय लोगों ने कहा कि पटियाला चलकर शेष सेना का प्रबन्ध किया जावे, परन्तु

रानी ने नही माना और यह परामर्श ठहरी कि मरहट्टो पर रात को आक्रमण करो। ऐसा ही हुआ और सिक्ख मरहट्टो पर टूट पड़े। फिर क्या था, गाजर मूली की तरह काटकर फेकने लगे। इस प्रकार साहिबकुँवरि की बुद्धिमानी से देश मरहट्टो के हाथ से बच गया।

सं० १७९६ में रानी थोड़ी सेना लेकर नाहन के राजा के प्रतिकूल लड़ने के लिए बिगड़ खड़ी हुई थी। यहाँ भी रानी ने बड़ी वीरता दिखलाई। वह तीन महीने तक नाहन मे रही और चलते समय राजा ने बहुत से बहुमूल्य पदार्थ उसकी भेंट किये।

नाहन की लड़ाई के दो वर्ष पीछे जार्ज टामस हाँसी हिसार को विजय करके सिक्खो की ओर बढ़ने लगा। उसके साथ आठ रेज़िमेंट सिपाहियो का था। हजार सवार और पचास तोपे थी। उसने सिक्ख सर्दारो को लाहौर गए हुए देखकर जीद पर आक्रमण किया। सब अपनी-अपनी सेना लेकर जीद आ गये। परन्तु टामस के सामने किसी की दाल न गली। लेकिन रानी साहिबकुँवरि अपने वीर सिपाहियो के साथ मैदान में पहुँच गई और बैरी के छक्के छुड़ा दिए। रानी की इस वीरता स वह बिवश होकर जेहमल चला गया और सिक्खो ने उसका पीछा किया। परन्तु जिस समय टामस की तोपों से गोले चलने लगे सिक्खो की सेना तितर बितर होगई।

इस पराजय से सिक्खों की रही सही हिम्मत जाती रही। इसके पीछे रानी पटियाला चली आई। लोगों के भड़काने से रानी का राजा बैरी हो गया और उसने उसके महान् कार्यों को भुला दिया। रानी ने देखा, राजा की दृष्टि मुझ से फिर

गई। वह फिर निराश होकर अपनी जागीर में चली आई। राजा ने यहाँ भी उपद्रव मचाया और किला खाली कर देने के लिए उसे आज्ञा दी।

रानी को भाई के इस काम से बड़ा शोक हुआ। राजा क्रोध में आकर चाहता था कि रानी से लड़े। परन्तु मंत्रियो के समझाने से वह रुक गया। रानी को यह बात बुरी लगी और वह स्वयं पटियाला की ओर चल निकली।

रानी को धोखा देकर लागा ने पटियाला चलने के लिए उद्यत कर लिया। राह में सेना ने रानी को ढोढन के क़िले में बन्द कर दिया। रानी बहुत दिनो तक वहाँ बन्धन में रही। उसने अपने सेवक का वस्त्र धारण कर लिया और वह क़िले से निकल भागी।

राजा ने विवश होकर रानी का पीछा छोड़ा। वह भेरियाँ में कई साल तक रही। प्राय अपनी जागीर में रहकर अपने काम काज करती थी। जब अवकाश होता, उसका पति भी भेरियाँ में आ जाता था। यह दोनों स्त्री पुरुष परस्पर बड़ा प्रेम रखते थे। सं० १७९९ में रानी साहिबकुँवरि स्वर्ग-धाम को चली गई। इसके मरने पर सारे देश मे शोक प्रगट किया गया। राजा साहिबसिह को रानी के मरने पर बड़ा शोक हुआ।

परमात्मन्! भारत में ऐसी ही सहनशक्तिशीला वीर-मातायें उत्पन्न करो जिससे भारत का मुख उज्ज्वल हो और आर्य्य-जाति अपनी उस गौरव-शालिनी सभ्यता को फिर प्राप्त करे जिसके कारण वह किसी समय लोक विख्यात थी।

ओ३म् शान्तिः! शान्ति!! शान्तिः!!!